Kastursa Sahuji, B. A., DIP. ED.
Inspector of Schools,

प्रकीर्णक-पुस्तकमालाका आठवाँ पुष्प

महाप्रामाणिकचूडामणिश्रीमदनन्तकीर्त्तिविरचित

शासन-चतुस्त्रिंशिका

[हिन्दी-अनुवादादि-सहित]

सम्पादक और अनुवादक

न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन कोठिया, शास्त्री

(सम्पादक-अनुवादक—न्यायदीपिका, अध्यात्मकमलमार्तण्ड, श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र और आप्तपरीक्षा)

प्रकाशक

वीरसेवामन्दिर सरसावा, जिला सहारनपुर

प्रथमावृत्ति ५०० प्रति	भाद्रपद, वीरनिर्वाण सं० २४७५ विक्रम सं० २००६ अगस्त १९४९	लागत मूल्य बारह आने

पुस्तकाऽनुक्रम

१ सम्पादकीय	....	....	३
२ श्रेय	....	....	६
३ प्रस्तावना	....	....	७
४ विषय-सूची	....	....	२०
५ शासन-चतुस्त्रिंशिका	....	....	१-२५
६ शासन-चतुस्त्रिंशिकाका पद्यानुक्रम		....	२६
७ परिशिष्ट	....	....	२७-५५
८ शासन चतुस्त्रिंशिकाकी विशेष नाम सूची		....	५५-५६

श्री. से. [illegible] [illegible]

[illegible]

मि. आ. [illegible] नं. २५०

सम्पादकीय

१. प्रति-परिचय

प्रस्तुत प्रतिका जिस प्रतिपरसे अनुवाद तथा सम्पादन हुआ है मात्र वही एक प्रति जैन साहित्यमें उपलब्ध जान पड़ती है और श्री श्रद्धेय पं० नाथूरामजी प्रेमी बम्बईके सौजन्यसे कोई दो वर्ष पहले वीरसेवामन्दिरको प्राप्त हुई थी। इस प्रतिकी लम्बाई चौड़ाई १०×६ इंच है। दायीं और बायीं दोनों ओर एक-एक इंचका हाशिया छूटा हुआ है। इसमें कुल पाँच पत्र हैं और अन्तिम पत्रको छोड़कर प्रत्येक पत्रमें १८.१८ पंक्तियाँ तथा प्रत्येक पंक्तिमें प्रायः ३२, ३२ अक्षर हैं। अन्तिम पत्रमें (९+३=) १२ पंक्तियाँ और हरेक पंक्तिमें उपर्युक्त (३२, ३२) जितने अक्षर हैं। कुछ टिप्पण भी साथमें कहीं कहीं लगे हुए हैं जो मूलको समझनेमें कुछ मदद पहुँचाते हैं। यह प्रति काफी (सम्भवतः चार-पाँचसौ वर्षकी) प्राचीन प्रतीत होती है और बहुत कुछ जीर्ण-शीर्ण दशामें है। लगभग चालीस-पैंतालीस स्थानोंपर तो इसके अक्षर अथवा पद-वाक्यादि, पत्रोंके परस्पर चिपक जाने आदिके कारण, प्रायः मिट-से गये हैं और जिनके पढ़नेमें बड़ी कठिनाई महसूस होती है। इस कठिनाईका प्रेमीजीने भी अनुभव किया है और अपने 'जैन साहित्य और इतिहास' (पृ. १२९ के फुटनोट) में प्रतिका कुछ परिचय देते हुए लिखा है—"इस प्रतिमें लिखनेका समय नहीं दिया है परन्तु वह दो-तीनसौ वर्षसे कम पुरानी नहीं मालूम होती। जगह जगह अक्षर उड़ गये हैं जिससे

बहुतसे पद्य पूरे नहीं पढ़े जाते।" हमने सन्दर्भ, अर्थसंगति, अक्षर-विस्तारकयंत्र आदिसे परिश्रमपूर्वक सब जगहके अक्षरोंको पढ़ कर पद्योंको पूरा करनेका प्रयत्न किया है—सिर्फ एक जगहके अक्षर नहीं पढ़े गये और इसलिये वहाँपर.................. ऐसे बिन्दु बना दिये गये हैं। जान पड़ता है कि अबतक इसके प्रकाशनमें न आसकनेमें शायद यही कठिनाई कारण रही है। अस्तु।

२. प्रस्तुत संस्करण

६ अप्रेल सन् १९४७को जब इस कृतिकी उल्लिखित प्रति प्राप्त हुई तो मित्रवर पण्डित परमानन्दजीका विचार उसे अनेकान्तमें प्रकाशित कर देनेका हुआ और इसके लिये उन्होंने प्रेमीजीसे स्वीकृति भी मँगा ली, साथमें उसकी एक पाण्डुलिपि भी करली, पर बादको वे कुछ अनिवार्य कारणवश इस विचारको मूर्तरूप न दे सके। गत दिसम्बर (१९४८)में जब इसके प्रकाशनके विषयमें पुनः चर्चा चली तो इसे सम्पादन कर 'अनेकान्त'में अवश्य प्रकट कर देनेका विचार स्थिर हुआ। तदनुसार हमने पं० परमानन्दजीकी पाण्डुलिपिपर पहले मूलके साथ मिलान करके संशोधन किया और जो पाठ पढ़नेसे रह गये थे उन्हें पूरा कर प्रेस-कापी करके संक्षिप्त नोटके साथ इसे 'अनेकान्त'में प्रकट किया जो नववें वर्षकी ११ वीं १२ वीं संयुक्त किरणमें प्रकाशित है। इस बीचमें इसकी उपयोगिता, महत्व और गाम्भीर्यको देख कर अनुवादादिके साथ पुस्तकाकार रूपमें भी प्रकाशित करनेका निश्चय हुआ और प्रस्तुत संस्करण उसीका फलस्वरूप परिणाम है।

काश ! यह जीर्ण-शीर्ण प्रति भी न मिली होती तो जैन साहित्यकी एक अनमोल कृति और अपने समयके विख्यात विद्वानके सम्बन्धमें इन दो-चार पंक्तियोंको भी लिखनेका अवसर न मिलता। न मालूम ऐसी ऐसी कितनी साहित्यिक कृतियाँ जैन-साहित्य-भण्डारमेंसे सड़-गल गईं और जिनके नाम शेष भी नहीं हैं। आचार्य विद्यानन्दका विद्यानन्दमहोदय, अनन्तवीर्यका प्रमाणसंग्रहभाष्य आदि बहुमूल्यरत्न हमारे थोड़ेसे प्रमाद और लापरवाहीसे जैन-वाङ्मय-भण्डारमें नहीं पाये जाते, वे या तो नष्ट होगये या अन्यत्र चले गये ! ऐसी हालतमें इस उत्तम और जीर्ण-शीर्ण कृतिको प्रकाशमें लानेकी कितनी जरूरत थी, यह पाठकोंपर स्वयं प्रकट होजाता है।

३. आभार

अन्तमें हम जैन-साहित्य और इतिहासके सततोपासक और ममज्ञ विद्वान् प्रेमीजी और मुख्तारसाहबको नहीं भूल सकते जिनके संरक्षण और प्रकाशन-प्रयत्नोंसे ही यह कृति पाठकोंके हाथोंमें जारही है। अपने मित्र पं० परमानन्दजीके भी हम आभारी हैं जिन्होंने इस कृतिकी तथा अप्रकाशित मुनिउदयकीर्ति-कृत 'अपभ्रंशनिर्वाणभक्ति'की अपनी पाण्डुलिपियाँ दीं। हम उन लेखकों तथा सम्पादकोंके भी कृतज्ञ हैं जिनके ग्रन्थों, लेखों और पत्र-पत्रिकाओंका प्रस्तावना एवं तीर्थ-परिचयमें उपयोग हुआ है। इति।

वीरसेवामन्दिर, सरसावा
६ फरवरी १९४९

दरबारीलाल जैन कोठिया
न्यायाचार्य

प्रस्तावना

शासनचतुस्त्रिंशिका और मदनकीर्ति

१. शासनचतुस्त्रिंशिका

प्रस्तुत कृतिका नाम 'शासनचतुस्त्रिंशिका' है। यह एक छोटी-सी किन्तु सुन्दर एवं मौलिक रचना है। विक्रमकी १३वीं शताब्दीके सुविख्यात विद्वान् मुनि श्रीमदनकीर्तिजी-द्वारा यह रची गयी है। इसमें कोई २६ तीर्थस्थानों—८ सिद्ध तीर्थक्षेत्रों और १८ अतिशय तीर्थक्षेत्रों—का परम्परा अथवा अनुश्रुतिसे यथाज्ञात इतिहास एक-एक पद्यमें अति संक्षेप एवं संकेतरूपमें निबद्ध है। साथ ही उनके प्रभावोल्लेखपूर्वक दिगम्बरशासनका महत्त्व ख्यापित करते हुए उसका जयघोष किया गया है।

वस्तुतः जैनतीर्थोंके ऐतिहासिक परिचयमें जिन रचनाओं आदिसे विशेष मदद मिल सकती है उनमें यह रचना भी प्राचीनता आदिकी दृष्टिसे अपना विशिष्ट स्थान रखती है। विक्रम संवत् १३३४में बनकर समाप्त हुए चन्द्रप्रभसूरिके प्रभावकचरित्र, विक्रम संवत् १३६१में रचे गये मेरुतुङ्गाचार्यके प्रबन्धचिन्तामणि, विक्रम संवत् १३८९में पूर्ण हुए जिनप्रभसूरिके विविधतीर्थकल्प और विक्रम संवत् १४०५में निर्मित हुए राजशेखरसूरिके प्रबन्ध-कोश (चतुर्विंशतिप्रबन्ध)में भी जैनतीर्थोंके इतिहासकी उल्लेखनीय सामग्री पायी जाती है। परन्तु मुनि मदनकीर्तिकी, जिन्हें 'महाप्रामाणिकचूडामणि'का विरुद प्राप्त था और जिसका उल्लेख

राजशेखरसूरिने अपने उक्त प्रबन्धकोश (पृष्ठ ६४)में किया है और उनके सम्बन्धका एक स्वतन्त्र 'मदनकीर्तिप्रबन्ध' नामका प्रबन्ध भी लिखा है, प्रस्तुत शासनचतुस्त्रिंशिका, इन चारों रचनाओंसे सौ-पचास वर्ष पहले (विक्रम संवत् १२८५के लगभग)की रची हुई है। अतः यह रचना जैनतीर्थोंके इतिहासके परिचयमें खास तौरसे उल्लेखनीय है।

इसमें कुल ३६ पद्य हैं जो अनुष्टुप् छन्दमें प्रायः ८४ श्लोक जितने हैं। इनमें नंबरहीन पहला पद्य अगले ३२ पद्योंके प्रथमाक्षरों से रचा गया है और जो अनुष्टुप्-वृत्तमें है। अन्तिम(३५वाँ) पद्य प्रशस्ति-पद्य है जिसमें रचयिताने अपने नामोल्लेखके साथ अपनी कुछ आत्मचर्या दी है और जो मालिनी छन्दमें है। शेष ३४ पद्य ग्रन्थ-विषयसे सम्बद्ध हैं, जिनकी रचना शार्दूलविक्रीडित वृत्तमें हुई है। इन चौंतीस पद्योंमें दिगम्बरशासनके प्रभाव और विजय-का प्रतिपादन होनेसे यह रचना 'शासनचतुस्त्रिंशि(शति)का' अथवा 'शासनचौंतीसी' जैसे नामोंसे जैनसाहित्यमें प्रसिद्ध है।

इसमें विभिन्न तीर्थस्थानों और वहाँके दिगम्बर जिन-बिम्बोंके अतिशयों, माहात्म्यों और प्रभावोंके प्रदर्शनद्वारा यह बतलाया गया है कि दिगम्बरशासन अपनी अहिंसा, अपरिग्रह (निर्ग्रन्थता), स्याद्वाद आदि विशेषताओंके कारण सब प्रकारसे जयकारकी क्षमता रखता है और उसके लोकमें बड़े ही प्रभाव तथा अतिशय रहे हैं। कैलासका ऋषभदेवका जिनबिम्ब, पोदनपुरके बाहुबलि, श्रीपुरके पार्श्वनाथ, हुलगिरि अथवा होला-गिरिके शङ्खजिन, धाराके पार्श्वनाथ, बृहत्पुरके बृहद्देव, जैनपुर

(जैनबिद्री)के दक्षिण-गोम्मटदेव, पूर्वदिशाके पार्श्वजिनेश्वर, विश्वसेनद्वारा समुद्रसे निकाले शान्तिजिन, उत्तरदिशाके जिनबिम्ब, सम्मेदशिखरके बीस तीर्थङ्कर, पुष्पपुरके श्रीपुष्पदन्त, नागद्रहके नागहृदेश्वरजिन, सम्मेदशिखरकी अमृतवापिका, पश्चिमसमुद्रतटके श्रीचन्द्रप्रभजिन छायापार्श्वप्रभु, श्रीआदिजिनेश्वर, पावापुरके श्रीवीरजिन, गिरनारके श्रीनेमिनाथ, चम्पापुरके श्रीवासुपूज्य, नर्मदाके जलसे अभिषिक्त श्रीशान्तिजिनेश्वर, अवरोधनगर (आश्रम[१] या आशारम्य)के श्रीमुनिसुव्रतजिन, विपुलगिरिका जिनबिम्ब, विन्ध्यगिरिके जिनचैत्यालय, मेदपाट(मेवाड़)-देशस्थ नागफणी ग्रामके श्रीमल्लिजिनेश्वर और मालवादेशके मङ्गलपुरके श्रीअभिनन्दनजिन इन २६के लोक-विश्रुत अतिशयोंका इसमें समुल्लेख हुआ है। इसके अलावा यह भी प्रतिपादन किया गया है कि स्मृतिपाठक, वेदान्ती, वैशेषिक, मायावी, योग, सांख्य, चार्वाक और बौद्ध इन दूसरे शासनोंद्वारा भी दिगम्बरशासन कई बातोंमें समाश्रित हुआ है।

इस तरह यह रचना जहाँ दिगम्बरशासनके प्रभावकी प्रकाशिका है वहाँ साथमें इतिहास-प्रेमियोंके लिये इतिहासानुसन्धानकी कितनी ही महत्वकी सामग्रीको लिये हुए है और इसलिये इसकी उपादेयता तथा उपयोगिता इस विषयकी किसी भी दूसरी कृतिसे कम नहीं है। इसका एक-एक पद्य एक-एक स्वतन्त्र निबन्धका विषय है, इसीसे पाठक इसके महत्वको जान सकते हैं।

---

१ उदयकीर्तिमुनिकृत अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिमें आश्रम और प्रा० निर्वाणकाण्ड गाथा २०में आशारम्यनगरका उल्लेख है।

२. मुनि मदनकीर्ति

अब विचारणीय यह है कि इसके रचयिता मुनि मदनकीर्ति कब हुए हैं, उनका निश्चित समय क्या है और वे किस विशेष अथवा सामान्य परिचयको लिये हुए हैं? अतः इन सब बातोंपर नीचे कुछ विचार किया जाता है—

समय-विचार

(क) जैसा कि ऊपर कहा गया है, श्वेताम्बर विद्वान् राजशेखरसूरिने विक्रम सं० १४०५ में प्रबन्धकोष लिखा है जिसका दूसरा नाम चतुर्विंशतिप्रबन्ध भी है। इसमें २४ प्रसिद्ध पुरुषों—१० आचार्यों, ४ संस्कृतभाषाके सुप्रसिद्ध कवि-पण्डितों, ७ प्रसिद्ध राजाओं और ३ राजमान्य सद्गृहस्थोंके प्रबन्ध (चरित) निबद्ध हैं। संस्कृतभाषाके जिन ४ सुप्रसिद्ध कवि-पण्डितोंके प्रबन्ध इसमें निबद्ध हैं उनमें एक प्रबन्ध दिगम्बर विद्वान् विशालकीर्तिके प्रख्यात शिष्य मदनकीर्तिका भी है और जिसका नाम 'मदनकीर्त्ति-प्रबन्ध' है। इस प्रबन्धमें मदनकीर्तिका परिचय देते हुए राजशेखरसूरिने लिखा है कि "उज्जयिनीमें दिगम्बर विद्वान् विशालकीर्ति रहते थे। उनके मदनकीर्तिनामका एक शिष्य था। वह इतना बड़ा विद्वान् था कि उसने पूर्व, पश्चिम और उत्तरके समस्त वादियोंको जीत कर '*महाप्रामाणिकचूडामणि*' के विरुदको प्राप्त किया था। कुछ दिनोंके बाद उसके मनमें यह इच्छा पैदा हुई कि दक्षिणके वादियोंको भी जीता जाय और इसके लिये उन्होंने गुरुसे आज्ञा माँगी। परन्तु गुरुने दक्षिणको 'भोगनिधि'

देश बतलाकर वहाँ जानेकी आज्ञा नहीं दी ; किन्तु मदनकीर्ति गुरुकी आज्ञाको उलंघ करके दक्षिणको चले गये । मार्गमें महाराष्ट्र आदि देशोंके वादियोंको पददलित करते हुए कर्णाट देश पहुँचे। कर्णाटदेशमें विजयपुरमें जाकर वहाँके नरेश कुन्तिभोजको अपनी विद्वत्ता और काव्यप्रतिभासे चमत्कृत किया और उनके अनुरोध करनेपर उनके पूर्वजोंके सम्बन्धमें एक ग्रन्थ लिखना स्वीकार किया। मदनकीर्ति एक दिनमें पांचसौ श्लोक बना लेते थे, परन्तु स्वयं उन्हें लिख नहीं सकते थे। अतएव उन्होंने राजासे सुयोग्य लेखककी माँग की। राजाने अपनी सुयोग्य विदुषी पुत्री मदनमंजरी को उन्हें लेखिका दी। वह पर्दाके भीतरसे लिखती जाती थी और मदनकीर्ति धाराप्रवाहसे बोलते जाते थे। कालान्तरमें इन दोनोंमें अनुराग होगया। जब गुरु विशालकीर्तिको यह मालूम हुआ तो उन्होंने समझानेके लिये पत्र लिखे और शिष्योंको भेजा। परन्तु मदनकीर्तिपर उनका कोई असर न हुआ।

इस प्रबन्धके कुछ आदिभागको नीचे नमूनेके तौरपर दिया जाता है—

"उज्जयिन्यां विशालकीर्तिर्दिगम्बरः। तच्छिष्यो मदनकीर्तिः। स पूर्वपश्चिमोत्तरासु तिसृषु दिक्षु वादिनः सर्वान् विजित्य 'महाप्रामाणिक-चूडामणिः' इति बिरुदमुपार्ज्य स्वगुर्वलंकृतामुज्जयिनीमागात्। गुरूनवन्दिष्ट। पूर्वमपि जनपरम्पराश्रुततत्कीर्तिः स मदनकीर्तिः भूयिष्ठमश्लाघिष्ट। सोऽपि प्रामोदिष्ट। दिनकतिपयानन्तरं च गुरुं न्यगादीत— भगवन्! दाक्षिणात्यान् वादिनो विजेतुमीहे। तत्र गच्छामि। अनुज्ञा दीयताम्। गुरुणोक्तम्—वत्स! दक्षिणां मा गाः। स हि भोगनिधिर्देशः।

को नाम तत्र गतो दर्शन्यपि न तपसो भ्रश्येत् । एतद्गुरुवचनं विलंघ्य विद्यामदाध्मातो जालकुद्दालनिःश्रेण्यादिभिः प्रभूतैश्च शिष्यैः परिकरितो महाराष्ट्रादिवादिनो मृद्नन् कर्णाटदेशमाप ।

तत्र विजयपुरे कुन्तिभोजं नाम राजानं स्वयं त्रैविद्यविदं विद्वत्प्रियं सदसि निषण्णं स द्वास्थनिवेदितो ददर्श । तमुपश्लोकयामास.........।" इत्यादि ।

इस प्रबन्धमे दो बातें स्पष्ट हैं । एक तो यह कि मदनकीर्ति निश्चय ही एक ऐतिहासिक सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं और वे दिगम्बर विद्वान् विशालकीर्तिके सुविख्यात एवं 'महाप्रामाणिकचूडामणि' की पदवी प्राप्त वादिविजेता शिष्य थे तथा इन प्रबन्धकोशाकार राजशेखरसूरि अर्थात् विक्रम सं० १४०५ से पहले हो गये हैं। दूसरी बात यह कि वे विजयपुरनरेश कुन्तिभोजके समकालीन हैं। और उनकेद्वारा सम्मानित हुए थे ।

अब देखना यह है कि कुन्तिभोजका समय क्या है ? जैन-साहित्य और इतिहासके प्रसिद्ध विद्वान् पं० नाथूरामजी प्रेमीका अनुमान है[1] कि 'प्रबन्धकोषवर्णित विजयपुरनरेश कुन्तिभोज और सोमदेव(शब्दार्णवचन्द्रिकाकार)-वर्णित वीरभोजदेव एक ही हैं । सोमदेवमुनिने अपनी शब्दार्णवचन्द्रिका कोल्हापुर प्रान्तके अर्जुरिका ग्राममें वादीभवज्राङ्कुश विशालकीर्ति पण्डितदेवके वैयावृत्यसे वि० सं० १२६२में बनाकर समाप्त की थी[2]

---

१ देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ० १३६ ।

२ देखो, उक्त ग्रन्थके पृ० १३८के फुटनोटमें उद्धृत शब्दार्णवचन्द्रिकाकी अन्तिम प्रशस्ति ।

और उस समय वहाँ वीर-भोजदेवका राज्य था। सम्भव है विशाल-कीर्ति अपने शिष्य मदनकीर्तिको समझानेके लिये उधर कोल्हापुर तरफ गये हों और तभी उन्होंने सोमदेवकी वैयावृत्त्य की हो।' यदि प्रेमीजीका अनुमान ठीक हो तो कुन्तिभोजका समय विक्रम सं० १२६२ के लगभग जान पड़ता है और इस लिये विशाल-कीर्तिके शिष्य मदनकीर्तिका समय भी यही विक्रम सं० १२६२ होना चाहिये।

(ख) पण्डित आशाधरजी ने अपने जिनयज्ञकल्पमें[1], जिसे प्रतिष्ठासारोद्धार भी कहते हैं और जो विक्रम संवत् १२८५ में बनकर समाप्त हुआ है, अपनी एक प्रशस्ति[2] दी है। इस प्रशस्ति में अपना विशिष्ट परिचय देते हुए एक पद्यमें उन्होंने उल्लेखित किया है कि वे *मदनकीर्तियतिपति*के द्वारा *'प्रज्ञापुञ्ज'*के नामसे अभिहित हुए थे अर्थात् *मदनकीर्तियतिपति* ने उन्हें *'प्रज्ञापुञ्ज'* कहा था। *मदनकीर्तियतिपति*के उल्लेखवाला उनका वह प्रशस्तिगत पद्य निम्न प्रकार है:—

इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योऽभिनन्दितः प्रीत्या।
प्रज्ञापुञ्जोऽसीति च योऽभिहि(म)तो मदनकीर्तियतिपतिना॥

इस उल्लेखपरसे यह मालूम होजाता है कि मदनकीर्ति-यतिपति, पण्डित आशाधरजीके समकालीन अथवा कुछ पूर्ववर्ती

---

१ विक्रमवर्षसपंचाशीतिद्वादशशतेष्वतीतेषु।
आश्विनसितान्त्यदिवसे साहसमल्लापराख्यस्य॥१६॥

२ यही प्रशस्ति कुछ हेर-फेरके साथ उनके सागारधर्मामृत आदि दूसरे कुछ ग्रन्थोंमें भी पाई जाती है।

विद्वान् थे और विक्रम संवत् १२८५के पहले वे सुविख्यात होचुके थे तथा साधारण विद्वानों एवं मुनियोंमें विशिष्ट व्यक्तित्वको भी प्राप्त कर चुके थे और इसलिये यतिपति–मुनियोंके आचार्य माने जाते थे। अतः इस उल्लेखसे मदनकीर्त्ति विक्रम संवत् १२८५ के निकटवर्ती विद्वान् सिद्ध होते हैं।

(ग) मदनकीर्त्तिने शासनचतुस्त्रिंशिकामें एक जगह (२४वें पद्यमें) यह उल्लेख किया है कि आततायी म्लेच्छोंने भारतभूमिको रोंधते हुए मालवदेशके मङ्गलपुर नगरमें जाकर वहाँके श्रीअभिनन्दन-जिनेन्द्रकी मूर्तिको भग्न कर दिया और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये, परन्तु वह जुड़ गई और सम्पूर्णावयव बन गई और उसका एक बड़ा अतिशय प्रकटित हुआ। जिनप्रभसूरिने अपने विविधतीर्थकल्प अथवा कल्पप्रदीपमें, जिसकी रचना उन्होंने विक्रम सं० १३६४ से लगाकर विक्रम सं० १३८९ तक २५ वर्षोंमें की है¹, एक 'अवन्तिदेशस्थ-अभिनन्दनदेवकल्प' नामका कल्प निबद्ध किया है। इसमें उन्होंने भी म्लेच्छसेनाके द्वारा अभिनन्दन-जिनकी मूर्तिके भग्न होनेका उल्लेख किया है और उसके जुड़ने तथा अतिशय प्रकट होनेका वृत्त दिया है और बतलाया है कि यह घटना मालवाधिपति जयसिंहदेव के राज्यकालसे कुछ वर्ष पूर्व हो ली थी और जब उसे अभिनन्दनजिनका आश्चर्यकारी अतिशय सुननेमें आया तो वह उनकी पूजाके लिये गया और पूजा करके अभिनन्दनजिनकी देखभाल करने वाले अभयकीर्ति, भानुकीर्ति आदि मठपति आचार्यों (भट्टारकों) के लिये देवपूजार्थ २४ हलकी

---

१ देखो, मुनिजिनविजयजी द्वारा सम्पादित विविधतीर्थकल्पकी प्रस्तावना पृ० २।

खेती योग्य जमीन दी तथा १२ हलकी जमीन देवपूजकोंके वास्ते प्रदान की। यथा—

"तमतिशयमतिशायिनं निशम्य श्रीजयसिंहदेवो मालवेश्वरः स्फुरद्भक्तिप्राग्भारभास्वरान्तःकरणः स्वामिनं स्वयमपूजयुजत्। देवपूजार्थं च चतुर्विंशतिहलकृष्यां भूमिमदत्त मठपतिभ्यः। द्वादशहलवाह्यां चावनीं देवार्चकेभ्यः प्रददावन्तिपतिः। अद्यापि दिग्मण्डलव्यापिप्रभाववैभवो भगवानभिनन्दनदेवस्तत्र तथैव पूज्यमानोऽस्ति।"

—*विविधतीर्थ०* पृ० ५८।

जिनप्रभसूरिद्वारा उल्लिखित यह मालवाधिपति जयसिंहदेव द्वितीय जयसिंहदेव जान पड़ता है, जिसे जैतुगिदेव भी कहते हैं और जिसका राज्यसमय विक्रम सं० १२९० के बाद और विक्रम सं० १३१४ तक बतलाया जाता है[१]। पण्डित आशाधरजीने त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र, सागारधर्मामृतटीका और अनगारधर्मामृतटीका ये तीन ग्रन्थ क्रमशः विक्रम सं० १२९२, १२९६ और १३०० में इसी (जयसिंहदेव द्वितीय अथवा जैतुगिदेव) के राज्यकालमें बनाये हैं[२]। जिनयज्ञकल्पकी प्रशस्ति (पद्य ५) में पण्डित आशाधरजीने यहाँ ध्यान देने योग्य एक बात यह लिखी है[३] कि 'म्लेच्छपति

१ देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ० १३४।

२ देखो, इन ग्रन्थोंकी अन्तिम प्रशस्तियाँ।

३ म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति-
त्रासाद्विन्ध्यनरेन्द्रदोः परिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि।
प्राप्तो मालवमण्डले बहुपरीवारः पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः ॥५॥
'म्लेच्छेशेन साहिबुदीन तुरुष्कराजेन' —सागारधर्मा० टीका पृ० २४३।

साहिबुद्दीनने जब सपादलक्ष (सवालख) देश (नागौर-जोधपुरके आसपासके प्रदेश) को ससैन्य आक्रान्त किया तो वे अपने सदाचारकी हानिके भयसे वहाँसे चले आये और मालवाकी धारा नगरीमें आ बसे। इस समय वहाँ विन्ध्यनरेश (विक्रम सं० १२१७ से विक्रम सं० १२४९)का राज्य था।' यहाँ पण्डित आशाधरजीने जिस मुस्लिम बादशाह साहिबुद्दीनका उल्लेख किया है वह शहाबुद्दीनगौरी है। इसने विक्रम सं० १२४९ (ई० सन् ११९२) में गजनीसे आकर भारतपर हमला करके दिल्लीको हस्तगत किया था और उसका १४ वर्ष तक राज्य रहा। और इसलिये असम्भव नहीं इसी आततायी बादशाह अथवा उसके सरदारोंने ससैन्य उक्त १४ वर्षोंमें किसी समय मालवाके उल्लिखित धन-धान्यादिसे भरपूर मङ्गलपुर नगरपर धावा मारा हो और हीरा-जवाहरातादिके मिलनेके दुर्लोभ अथवा धार्मिक विद्वेषसे वहाँके लोकविश्रुत श्रीअभिनन्दनजिनके चैत्यालय और बिम्बको तोड़ा हो और उसी-का उल्लेख मदनकीर्तिने "म्लेच्छैः प्रतापागतैः" शब्दों द्वारा किया हो। यदि यह ठीक हो तो यह कहा जा सकता है कि मदनकीर्त्तिने इस शासनचतुस्त्रिंशिकाको विक्रम सं० १२४९ और वि० सं० १२६३ या वि० सं० १२१४ के भीतर किसी समय रचा है और इसलिये उनका समय इन संवतोंका मध्यकाल होना चाहिये।

इस ऊहापोहसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि मदन-कीर्त्ति वि० सं० १२८५ के पं० आशाधरजीकृत जिनयज्ञकल्पमें उल्लिखित होनेसे उनके समकालीन अथवा कुछ पूर्ववर्ती विद्वान् निश्चितरूपमें हैं, और इसलिये उनका वि० सं० १२८५ के आस-पासका समय सुनिश्चित है।

स्थानादि-विचार

समयका विचार करनेके बाद अब मदनकीर्तिके स्थान, गुरुपरम्परा, योग्यता और प्रभावादिपर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए। मदनकीर्ति वादीन्द्र विशालकीर्तिके शिष्य थे और वादीन्द्र विशालकीर्तिने पं० आशाधरजीसे न्यायशास्त्रका अभ्यास किया था। पं० आशाधरजीने धारामें रहते हुए ही उन्हें न्यायशास्त्र पढ़ाया था और इसलिये उक्त दोनों विद्वान् (विशालकीर्ति तथा मदनकीर्ति) भी धारामें ही रहते थे। राजशेखरसूरिने भी उन्हें उज्जयिनीके रहने वाले बतलाया है। अतः मदनकीर्तिका मुख्यतः स्थान उज्जयिनी (धारा) है। ये वाद-विद्यामें बड़े निपुण थे। चतुर्दिशाओंके वादियोंको जीत कर उन्होंने '*महाप्रामाणिक-चूडामणि*'की महनीय पदवी प्राप्त की थी। ये उच्च तथा आशु कवि भी थे। कविता करनेका इन्हें इतना उत्तम अभ्यास था कि एक दिनमें ५०० श्लोक रच डालते थे। विजयपुरके नरेश कुन्ति-भोजको इन्होंने अपनी काव्यप्रतिभासे आश्चर्यान्वित किया था और इससे वह बड़ा प्रभावित हुआ था। पण्डित आशाधरजीने इन्हें 'यतिपति' जैसे विशेषणके साथ उल्लेखित किया है। इन सब बातोंसे इनकी योग्यता और प्रभावका अच्छा आभास मिलता है।

संभव है राजाकी विदुषी पुत्री और इनका आपसमें अनुराग हो गया हो और ये अपने पदसे च्युत हो गये हों; पर वे पीछे सम्हल गये थे और अपने कृत्यपर घृणा भी करने लगे थे। इस बातका कुछ स्पष्ट आभास उनकी इसी शासनचतुस्त्रिंशतिकाके

"यत्पापवासाद्धालोयं" इत्यादि प्रथम पद्य और "इति हि मदनकीर्त्तिश्चिन्तयन्नाऽऽत्मचित्ते" इत्यादि ३५वें पद्यसे होता है और जिसपरसे मालूम होता है कि वे कठोर तपका आचरण करते तथा अकेले विहार करते हुए इन्द्रियों और कषायोंकी उद्दाम प्रवृत्तियोंको कठोरतासे रोकनेमें उद्यत रहते थे और जीवमात्रके प्रति बन्धुत्वकी भावना रखते थे। तात्पर्य यह कि मदनकीर्ति अपने अन्तिम जीवनमें प्रायश्चित्तादि लेकर यथावत् मुनिपदमें स्थित होगये थे और दैगम्बरी वृत्ति तथा भावनासे अपना समय यापन करते थे, ऐसा उक्त पद्योंसे मालूम होता है। उनका स्वर्गवास कब, कहाँ और किस अवस्थामें हुआ, इसको जाननेके लिये कोई साधन प्राप्त नहीं है। पर इतना जरूर कहा जा सकता है कि वे मुनि-अवस्थामें ही स्वर्गवासी हुए होंगे, गृहस्थ अवस्थामें नहीं; क्योंकि अपने कृत्यपर पश्चात्ताप करनेके बाद पूर्ववत् मुनि होगये थे और उसी समय यह शासनचतुस्त्रिंशिका रची, ऐसा इसके अन्तःपरीक्षणपरसे प्रकट होता है।

इसमें सन्देह नहीं कि कमजोरियाँ प्रायः हरेक मनुष्यमें होती हैं और वे उन कमजोरियोंके शिकार भी हो जाते हैं। परन्तु जो गिरकर उठ जाता है वह कमजोर या पतित नहीं, कमजोर या पतित तो वह है जो गिरा ही गिरा रहता है, उठना नहीं जानता। राजशेखरसूरिने कुछ घटा-बढ़ाकर उनका चरित्र चित्रण किया जान पड़ता है। प्रेमीजीने[1] भी उनके इस चित्रणपर अविश्वास प्रकट किया है और मदनकीर्तिसे सौ वर्ष बाद लिखा होनेसे

---

१ जैनसाहित्य और इतिहास पृ० १३६।

'घटनाको गहरा रंग देने' या 'तोड़े मरोड़े जाने' तथा 'कुछ तथ्य' होनेका सूचन किया है। जो हो, फिर भी उसमेंके ऐतिहासिक तथ्यका मूल्यांकन इतिहासमें होगा ही।

इस रचनाके अलावा मदनकीर्तिकी और भी कोई रचनाएँ हैं या नहीं, यह अज्ञात है। पर विजयपुर नरेश कुन्तिभोजके पूर्वजोंके सम्बन्धमें लिखा गया इनका परिचयग्रन्थ शायद रहा है, जिसके रचनेका उल्लेख राजशेखरने अपने प्रबन्धकोष-गत मदनकीर्ति-प्रबन्धमें किया है। अस्तु।

दरबारीलाल कोठिया
न्यायाचार्य

वीरसेवामन्दिर, सरसावा

विषय–सूची

विषय			पद्य नं०
कैलाशके ऋषभजिन	....	....	१
पोदनपुरके श्रीबाहुबली	....	....	२
श्रीपुरके पार्श्वनाथ	....	....	३
हुलगिरिके शंखजिन	....	....	४
धाराके श्रीपार्श्वनाथ	....	....	५
बृहत्पुरके श्रीबृहद्देव	....	....	६
जैनपुर (जैनबिद्री)के श्रीदक्षिण-गोम्मटदेव		....	७
पूर्वदिशाके श्रीपार्श्वजिनेश्वर	....	....	८
श्रीशान्तिजिनेश्वर	....	....	९
उत्तरदिशाके श्रीनिर्ग्रन्थदेव	....	....	१०
सम्मेदगिरिके बीस तीर्थङ्कर	....	....	११
पुष्पपुरके श्रीपुष्पदन्त	....	....	१२
नागद्रहके श्रीनागहृदेश्वर	....	....	१३
सम्मेदगिरिकी अमृतवापिका	....	....	१४
स्मृतिपाठक तथा वेदान्तियोंद्वारा दिगम्बरशासनका आश्रय			१५
पश्चिमसमुद्रके श्रीचन्द्रप्रभजिन	....	....	१६
छायापार्श्वप्रभु	....	....	१७

लवणसमुद्रके श्रीआदिजिनेश्वर		....	१८
पावापुरके श्रीवीरजिन	....	....	१९
सौराष्ट्रस्थित श्रीगिरनारके श्रीनेमिनाथ		....	२०
चम्पाके श्रीवासुपूज्य	....	....	२१
वैशेषिक(कणाद)-द्वारा दिगम्बरशासनका आश्रय			२२
श्वेताम्बरों-द्वारा दिगम्बरशासनका आश्रय		....	२३
यौगों(कापालिकों)-द्वारा दिगम्बरशासनका आश्रय			२४
सांख्यों-द्वारा दिगम्बरशासनका आश्रय		....	२५
चार्वाकों-द्वारा दिगम्बर शासनका समाश्रयण		....	२६
नर्मदाके जलसे अभिषिक्त श्रीशान्तिजिन		....	२७
अवरोधनगरके श्रीमुनिसुव्रतजिन		....	२८
अपरिग्रहकी लोकमान्यता	....	....	२९
विपुलगिरिका जिनबिम्ब	....	....	३०
बौद्धों-द्वारा दिगम्बरशासनका आश्रय		....	३१
विन्ध्यगिरिके जिनालय	....	....	३२
मेवाड़-देशस्थ नागफणीके मल्लिजिनेश्वर		....	३३
मालवदेशस्थ मङ्गलपुरके श्रीअभिनन्दनजिन		....	३४
प्रशस्ति (आत्मनिवेदन)	....	....	३५

* नमः स्याद्वादमताय *

महाप्रामाणिकचूडामणिश्रीमदनकीर्ति-यतिपति विरचित

शासन-चतुस्त्रिंशिका

[हिन्दी-अनुवाद-सहित]

(अनुष्टुप्)

यत्पापवासाद्वालोयं यतो सोपास्त(श)यं स्मयं ।
शु(शो)त्स्यसौ यतिर्जैनमूचुः श्रीपूज्यसिद्धयः[1] ॥

यह श्लोक, जो अनुष्टुप् वृत्त(छन्द)में है, अगले बत्तीस श्लोकोंके प्रथमाक्षरोंसे रचा गया है। इसका अर्थ यह है कि 'यह बाल—अज्ञ (मदनकीर्ति) जिस पाप-गन्धसे मदको प्राप्त हुआ उसे वह यति (साधु)—इन्द्रियविजयी होकर नाश करनेमें उद्यत है[2] और इसलिये श्रीपूज्य-सिद्धियोंने उसे जैन—राग-द्वेष-मद आदिका विजेता—कहा है।'

इस पद्यपरसे प्रकारान्तरसे यह प्रकट है कि इस शासनचतुस्त्रिंशिका (शासन-चौंतीसी) के रचयिता एक विद्वान् जैन साधु हैं जो पहले किसी कारणवश अपने पदसे च्युत होगये और पीछे उपदेशादि मिलने अथवा अपनी गलतीका बोध होनेपर पुनः अपने पदपर आरूढ हो गये ज्ञात होते हैं। इसका कुछ विचार प्रस्तावनामें किया गया है।

---

१ (अग्रेतन)वृत्तानामाद्यक्षरै(र्निर्मितः) श्लोकोऽयम् । २ यः पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत् । —यशस्तिलक आ० ८, क० ४४ ।

(शार्दूलविक्रीडित)

यद्दीपस्य शिखेव भाति भविनां नित्यं पुनः पर्वसु
भूभृन्मूर्द्धनिवासिना सुपचितप्रीति प्रसन्नात्मनाम् ।
कैलासे जिनबिम्बमुत्तमथमत्सौवर्णवर्णं सुरा
वन्द्य(न्द)न्तेऽद्य दिगम्बरं सदमलं दिग्वाससां शासनम् ॥१॥

कैलास पर्वतके उस सातिशय चमकीले सुवर्णमय उत्तम जिनबिम्बकी देवगण आज भी वन्दना करते हैं जो दीपककी शिखा (ज्योति) की तरह देदीप्यमान है, जिसे भव्यजन प्रतिदिन और पर्वोपर पूजते हैं, और कैलास पर्वतपर रहनेवाले प्रसन्नात्माओंको प्रीति उत्पन्न करने वाला है तथा अमल-निर्दोष दिगम्बर शासनका प्रभावक है।

जैन पौराणिक अनुश्रुति है कि प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेवके पुत्र सम्राट भरतने कैलास पर्वतपर ७२ सुवर्णमय जिनमन्दिर बनवाये थे और जो लोकमें बहुत प्रसिद्ध तथा प्रभावशाली माने जाते थे एवं दिगम्बर जैन शासनके सातिशय प्रभावको प्रकट करने वाले थे। जान पड़ता है रचयिताने यहाँ उन्हीं जिनमन्दिरोंके अथवा और किसी समय निर्मित हुए ऋषभदेवके सातिशय जिनबिम्बका उल्लेख किया है।

पादाङ्गुष्ठनखप्रभासु भविनामाऽऽभान्ति पश्चाद्भवा
यस्यात्मीयभवा जिनस्य पुरतः[1] स्वस्योपवास-प्रमाः ।
अद्याऽपि प्रतिभाति पोदनपुरे यो वन्द्य-वन्द्यः स वै
देवो बाहुबली करोतु बलवद्दिग्वाससां शासनम् ॥२॥

जिनके पैरके अँगूठेकी नख-कान्तियोंमें भव्य जीवोंको अपने आगे-पीछेके अनेक भव प्रतिभासित होते हैं और जो इतर लोकजनोंके

१ अग्रतः अग्रे भवाः आत्मीयभवाः आभान्ति ।

भी वन्दनीय ऋषिमुनियों और देवादिकों द्वारा वन्दनीय हैं तथा आज भी पोदनपुरमें शोभित हैं वह बाहुबली स्वामी दिगम्बर शासनको प्रवृद्ध करें।

पोदनपुरमें, बाहुबली स्वामीकी विशालकाय एवं प्रभावपूर्ण जिनप्रतिमा प्रतिष्ठित बतलाई जाती है जो रचयिताके समयमें वहाँ मौजूद थी और जिसके लिये उन्होंने 'अद्याऽपि प्रतिभाति पोदनपुरे यो वन्द्यवन्द्यः स वै' शब्दोंका स्पष्ट प्रयोग किया है तथा जो दिगम्बरमुद्रामें विराजमान थी और लोकमें अपने प्रभावद्वारा दिगम्बर शासनकी महत्ताको प्रकट करती हुई ख्यातिको प्राप्त थी ॥२॥

पत्रं यत्र विहायसि प्रविपुले स्थातुं क्षणं न क्षमं
तत्राऽऽस्ते[1] गुणरत्नरोहणगिरिर्यो देवदेवो महान् ।
चित्रं नाऽत्र करोति कस्य मनसो दृष्टः[2] पुरे श्रीपुरे
स श्रीपार्श्वजिनेश्वरो विजयते दिग्वाससां शासनम् ॥३॥

जिस बहुत ऊँचे आकाशमें एक पत्ता भी क्षणभरके लिये ठहरनेको समर्थ नहीं है उस आकाशमें भगवान् पार्श्वजिनेश्वरका गुण-रत्नपर्वतरूप भारी जिनबिम्ब स्थिर है, श्रीपुर नगरके वह पार्श्वजिनेश्वर दर्शन करनेपर किसके मनको चकित नहीं करते? अर्थात् जिसने एक भी बार उनका दर्शन किया है उसके भी मनको उनकी उक्त प्रकारकी स्थितिपर आश्चर्य होता है। श्रीपुरके वह श्रीपार्श्वजिनेश्वर दिगम्बर शासनकी लोकमें विशिष्ट जय करते हुए वर्तमान रहें।

श्रीपुरके पार्श्वनाथका अतिशय प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि वहाँ भगवान् पार्श्वनाथका जिनबिम्ब आकाशमें इतने ऊँचे स्थिर रहता

---

१ यः पार्श्वजिनेश्वरः तत्र विहायसि (नभसि) आस्ते। २ दृष्टः सन्।

था कि उसके नीचेसे एक सवार निकल जाता था। इसी अतिशयका प्रस्तुत पद्यमें मुनि मदनकीर्तिने उल्लेख किया है। तार्किकशिरोमणि आचार्य विद्यानन्दने तो श्रीपुरके पार्श्वनाथको लक्ष्य करके एक महत्त्वका स्तोत्र ग्रन्थ ही रचा है, जिसका नाम 'श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र' है और जो तीस पद्यात्मक है ॥३॥

वासं सार्थपतेः[1] पुरा कृतवतः शङ्खान् गृहीत्वा बहून्
सद्धर्मोद्यतचेतसो हुलगिरौ कस्याऽपि धन्यात्मनः।
प्रातर्मार्गमुपेयुषो न चलिता शङ्खस्य गोणी पदं
यावच्छङ्खजिनो[2] निरावृति[3]रभाद्दिग्वाससां शासनम् ॥४॥

पूर्वकालमें एक सार्थपतिने, जिसका नाम सागरदत्त था और जो परम धार्मिक धनिक सत्पुरुष था, बहुत शङ्खोंको महणकर हुलगिरिपर रात्रिमें वास किया। जब वह वहाँसे प्रातः चलने लगा तो शङ्खकी गोणी (गोन) एक पद (डग) भी न चली, जब तक वहाँ शङ्खजिन दिगम्बर मुद्राको लिये हुए प्रकट हुए और इसलिये दिगम्बरोंका शासन महामहिमाशाली होनेसे सदा जयवन्त हो। अर्थात् लोकमें सर्वत्र प्रवर्तता हुआ वह सबका कल्याण करे।

इस पद्यमें, जिस अतिशय एवं महिमाको लिये हुए शङ्खजिनका आविर्भाव हुआ उसका समुल्लेख किया गया है और बतलाया गया है कि उनके दिगम्बररूपद्वारा ही वह महिमा लोकमें प्रसिद्ध हुई। यही कारण है कि अनेक जैन विद्वानोंने शङ्खजिनपर स्तोत्रादिके रूपमें कई महत्वपूर्ण रचनाएँ भी लिखी हैं। मालूम होता है कि उक्त हुलगिरि ही शङ्खजिनतीर्थ है और जो जैन साहित्यमें बहुत प्रसिद्ध रहा है ॥४॥

---

१ सागरदत्ताभिधानस्य। २ तावत् शंखदेवः। ३ दिगम्बररूपः।

मानन्दं निधयो[1] नवाऽपि नवधा यं[2] स्थापयाञ्चक्रिरे
वाप्यां पुण्यवतः स कस्यचिदहो स्वं[3] स्वादिदेश प्रभुः[4] ।
धारायां धरणोरगाधिप - शित - च्छत्र - श्रिया राजते
श्रीपार्श्वो नवगत्र(ह)एड-मण्डित-तनुर्दिग्वाससां शासनम्[5] ॥ ५ ॥

जिन पार्श्वप्रभुकी नव निधियोंने बड़े आनन्दपूर्वक नवप्रकार (नवधा भक्ति) से वापी (बावड़ी) में स्थापना की और एक पुन्यात्माके लिये अपना रूप प्रदर्शित किया तथा जो धरणेन्द्रनागपतिरूप छत्र-श्रीसे धारा (नगरी) में सुशोभित हैं एवं नव हाथकी अवगाहनासे संयुक्त हैं वह धाराके श्रीपार्श्वनाथ दिगम्बर शासनको प्रवृद्ध करें।

यहाँ जिस धाराके श्रीपार्श्वप्रभुकी महिमाका गान किया गया है वह उज्जयिनीकी प्रसिद्ध सांस्कृतिक और विद्याकेन्द्र नगरी तथा राजा भोज, जयसिंह आदि धारानरेशोंकी राजधानी प्रख्यात धारा जान पड़ती है। विद्वद्वर्य पंडित आशाधरजीने इसी धारामें कुछ काल तक विद्याभ्यास किया था। कोई आश्चर्य नहीं, पं० आशाधरजीके समकालीन मुनि मदनकीर्तिजीने यहाँ उसी धाराका उल्लेख किया है और वहाँके अतिशयप्राप्त श्रीपार्श्वनाथके दिगम्बर जिनबिम्बका इस पद्यमें प्रभाव प्रदर्शित किया है ॥५॥

द्वापञ्चाशदनूनपाणिपरमोन्मानं करैः[6] पञ्चभि-
र्यं चक्रे जिनमर्ककीर्तिनृप निर्मापणमेकं महत्[7] ।
तन्नाम्ना स[8] बृहत्पुरे वरबृहद्देवाख्यया गीयते
[9]श्रीमत्यादिनिषिद्धिकेयमवताद्दिग्वाससां शासनम् ॥ ६ ॥

---

१ कर्तारः । २ कर्मतापन्नं । ३ स्वकीयं स्वरूपं । ४ यः प्रभुः श्रीपार्श्वनाथः । ५ प्रति । ६ पंचभि करैः सह द्वापंचाशत् । सप्तपंचाशत् इत्यर्थः । ७ कथभूतं शासनं महत् । ८ स जिनः । ९ इयं श्रीमती आदि निषिद्धिका इति च लोकैर्गीयते ।

सत्तावन (५७) हाथ-प्रमाण पाषाणके जिस महान् जिनबिम्ब-को अर्ककीर्ति नृपतिने बनवाया, जिसे बृहत्पुरमें 'बृहद्देव' (बड़े बाबा) इस श्रेष्ठ नामसे सम्बोधित किया जाता है और लोगोंद्वारा यह भी कहा जाता है कि 'यह श्रीमती आदिकी निषिद्धिका (निसइ-समाधिस्थान) है' वह बृहत्पुरके श्रीबृहद्देव दिगम्बर शासनकी रक्षा करें—लोकमें उसे सदा बनाये रखें।

रचयिताने इस श्लोकमें बृहत्पुरके 'बृहद्देव' की महिमा यह बतलाई है कि वह ५७ हाथकी विशाल प्रस्तर-मूर्ति है, जिसे अर्क-कीर्ति राजाने निर्मित कराया था और इस विशालताके कारण ही वह 'बृहद्देव' इस उत्तम संज्ञाको लोकमें प्राप्त हुई। श्रीमती आदिकी निषिद्धिका भी लोगों द्वारा वही बतलाई जाती है ॥६॥

लोकैः पञ्चशतीमितैरविरतं संहृत्य निष्पादितं
यत्कक्षान्तरमेकमेव महिमा सोऽन्यस्य कस्याऽस्तु भो! ।
यो देवैरतिपूज्यते प्रतिदिनं जैने पुरे साम्प्रतं
देवो दक्षिणगोम(म्म)टः स जयतादिग्वाससां शासनम् ॥७॥

निरन्तर पाँचसौ जनों (आदमियों)ने मिलकर जिसका निर्माण किया और जिसका मध्यभाग केवल लताबेलों और सूखे घासादिसे युक्त है सो इस प्रकारकी महिमा और अन्य किसकी है अर्थात् वैसी महिमा और दूसरे किसीकी भी नहीं है तथा जिनकी देवोंद्वारा इस समय जैनपुर—जैनबिद्रीमें प्रतिदिन सविशेष पूजा की जाती है वह श्रीदक्षिणगोम्मटदेव दिगम्बरशासनकी जय करें—लोकमें वे उसे सदा स्थिर रखें।

प्रतीत होता है कि जैनबिद्रीके दक्षिणगोम्मटदेवका निर्माण पाँचसौ लोगोंने किया था, जो उसके बनानेमें एक साथ निरन्तर लगे

रहे थे और जिसका अतिशय यह है कि जैनबिद्रीमें वह देवोंद्वारा आज भी प्रतिदिन पूजा जाता है और इस तरह अपने प्रभावद्वारा लोकमें दिगम्बर-शासनकी महत्ता स्थापित करता है ॥७॥

यं दुष्टो न हि पश्यति क्षणमपि प्रत्यक्षमेवाऽखिलं
सम्पूर्णावयवं मरीचिनिचयं शिष्टः पुनः पश्यति ।
पूर्वस्यां दिशि पूर्वमेव पुरुषैः सम्पूज्यते[1] सन्ततं
स श्रीपार्श्वजिनेश्वरो दृढयते दिग्वाससां शासनम् ॥८॥

जिसका प्रत्यक्ष अतिशय यह है कि समस्त और सम्पूर्ण अवयव विशिष्ट होनेपर भी जिस मरीचिनिचय (तेजोमय) श्रीपार्श्वनाथका दुष्टको एक क्षणके लिये भी दर्शन नहीं होता; किन्तु शिष्ट (सज्जन)को उनका दर्शन होता है और पुरुषोंद्वारा पूर्व दिशामें हमेशा सबसे पहले जिनकी खासरूपसे पूजा की जाती है वह श्रीपार्श्व जिनेश्वर दिगम्बर-शासनको दृढ करें—मजबूत करें।

इस पद्यमें पूर्वदिशाके पार्श्वजिनेश्वरका यह अतिशय बतलाया गया है कि दुष्ट आशयवालोंको उनका दर्शन नहीं होता; किन्तु श्रेष्ठ आशयवालोंको उनका दर्शन होता है। अर्थात् शुभाशयवाले ही उनका दर्शन कर पाते हैं ॥८॥

यः पूर्वं भुवनैकमण्डनमणिः श्रीविश्वसेनाऽऽत्मजत्
निश्चक्राम महोदधेरिव हृदात्सद्वृत्तवत्याऽद्भुतम् ।
क्षुद्रोपद्रव-वर्जितोऽवनि-तले लोकं नरीनर्तयन्
स श्रीशान्तिजिनेश्वरो विजयते दिग्वाससां शासनम्[2] ॥९॥

---

१ सः सम्पूज्यते । २ प्रति ।

जो जगतके अद्वितीय भूषण हैं और आश्चर्यकी बात है कि जो विश्वसेनके आदर (भक्ति)से समुद्रसे उसी तरह निकले—प्रगट हुए जिसप्रकार तालाबसे सद्वेत्रवती (बेतवा)। और जो पृथ्वीपर क्षुद्र उपद्रवोंसे रहित होते हुए लोकको—अखिल विश्वको आनन्दकारक हुए। वह श्रीशान्तिजिनेश्वर दिग्वाससोंके शासनकी विजय करें—लोकमें उसके प्रभावको अधिकाधिक स्थापित करें ॥ ९ ॥

यौगा यं परमेश्वरं हि कपिलं साख्या निजं[१] योगिनो
बौद्धा बुद्धमजं[२] हरिं द्विजवरा जल्पन्त्युदीच्यां दिशि।
निश्चीरं[३] वृषलाञ्छनं ऋजुतनुं देवं जटाधारिणं
निर्ग्रन्थं परमं समाहुरमलं दिग्वाससां शासनम्[४] ॥१०॥

यौग (नैयायिक और वैशेषिक) उत्तर दिशामें स्थित जिस नग्न मूर्तिको 'परमेश्वर' (ईश्वर), सांख्य 'कपिल', योगी (आत्मध्यानी) जन 'निज' (आत्मा), बौद्ध 'बुद्ध', ब्राह्मण 'ब्रह्मा', 'विष्णु' वृषलांछन, सरलशरीरी और जटाधारी महादेव इन भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारते हैं—कथन करते हैं तथा जैन उसे परमनिर्ग्रन्थदेव कहते हैं वह उत्तरदिशाके अतिशययुक्त जिनदेव निर्मल दिगम्बर-शासनको प्रवृद्ध करें ॥ १० ॥

सोपानेषु सकष्टमिष्ट-सुकृतारूढा यान् वन्दति(ते)
सौधर्माधिपति-प्रतिष्ठित-वपुष्कायेऽ जिना[४] विंशतिः।
प्रख्याः स्वप्रमितिप्रभाभिरतुला सम्मेदपृथ्वीरुहि
भव्योऽन्यस्तु[६]न पश्यति प्रभुर्मिदं दिग्वाससां शासनम् ॥११॥

---

१ निजं परमेश्वरं। २ ब्रह्माणं। ३ अवक्रं। ४ प्रति। ५ सन्तीति चाध्याहारः। ६ तु पुनः। ७ कस्यचित्।

जो सौधर्मेन्द्रसे सम्पूजित सम्मेदगिरिपर प्रसिद्ध बीस जिनेन्द्र हैं, जो अपने ज्ञानकी प्रभासे अतुलनीय हैं और जिनकी भव्यजन ही अपने उत्तम पुण्यसे कष्टके साथ सीढ़ियोंपर चढ़कर वन्दना करते हैं, अभव्यको जिनके दर्शन नहीं होते, यह ध्रुव है वह बीस जिनेन्द्र दिगम्बर शासनके प्रभाव एवं महिमाको लोकहृदयोंमें अङ्कित करें।

प्रस्तुत पद्यमें यह बताया गया है कि श्रीसम्मेदगिरिसे निर्वाण-प्राप्त बीस जिनेन्द्रोंके जो जिनबिम्ब वहाँ प्रतिष्ठित हैं और जो दिगम्बरमुद्रामें मौजूद हैं उनके भव्योंको तो दर्शनादि होते हैं परन्तु अभव्यको नहीं होते, यह सम्मेदशिखर और वहाँके बीस जिनेन्द्रोंका खास अतिशय तथा माहात्म्य है ॥११॥

पाताले परमादरेण परया भक्त्याऽर्चितो व्यन्तरै-
र्यो देवैरधिकं स तोषमगमत्कस्याऽपि[1] पुंसः पुरा ।
भूभृन्मध्यतलादुपर्यनुगतः[2] श्रीपुष्पदन्तः प्रभुः
श्रीमत्पुष्पपुरे विभाति नगरे दिग्वाससां शासनम्[3] ॥१२॥

जो पहले व्यन्तरदेवोंके द्वारा पातालमें—अधोलोकमें बड़ी भक्तिसे पूजे गये, बादको पर्वतके मध्यतलसे ऊपर आनेपर किसी पुरुषके अधिक तोषके विषय हुए अर्थात् जिनके भूगर्भसे प्रकट होने पर किसी एक पुण्यात्माको बड़ा आनन्द हुआ और जो श्रीपुष्पपुर (पटना) नगरमें सुशोभित हैं वह श्रीपुष्पदन्तप्रभु दिगम्बर शासनकी महिमा विस्तारित करें ॥१२॥

ब्रह्मेति द्विजनायकैर्हरिरिति [प्रोद्गीयते] वैश्र(ष्ण)वै-
र्बौद्धैर्बुद्ध इति प्रमोदविवशैः शूलीति माहेश्वरैः ।

---

1 कस्यचित् । 2 सन् । 3 प्रति ।

कुष्ठाऽनिष्ठ-विनाशनो जनदृशां योऽलक्ष्यमूर्ति[1] विभुः
स श्रीनागहृदेश्वरो जिनपतिर्दिग्वाससां शासनम्[2] ॥१३॥

द्विजनायक—ब्राह्मण जिन्हें 'स्रष्टा', वैष्णव हरि (विष्णु), बौद्ध 'बुद्ध' और माहेश्वरी—शैव 'शूली' बड़े हर्षपूर्वक बतलाते हैं तथा जो कुष्ट (कोढ़) और अनिष्टों (विघ्न-बाधाओं) को विनष्ट (दूर) करनेवाले हैं अर्थात् जिनके दर्शनादिमात्रसे कोढ़ीजनोंका कोढ़ जैसे रोग और दर्शनार्थी भव्योंके नाना अनिष्टोंका सर्वथा नाश हो जाता है, और साधारण लोगोंके लिये जिनकी मूर्ति अलक्ष्य (अदृश्य) है वह श्रीनागद्रहतीर्थके नागहृदेश्वर (पार्श्व) जिनेन्द्रप्रभु दिगम्बर शासनका प्रभाव लोकमें खूब व्यापित करें।

नागद्रहतीर्थके श्रीनागजिन (पार्श्वनाथ) का यह माहात्म्य है कि उनके दर्शनादिसे कोढ जैसे भयङ्कर एवं असाध्य रोग तथा अनिष्ट दूर होजाते हैं और सामान्यजनोंके लिये वे अदृश्य हैं। इस माहात्म्यके कारण प्रमुख ब्राह्मण उन्हें 'स्रष्टा', वैष्णव, 'विष्णु' बौद्ध 'बुद्ध' और शैव 'शूली' कहकर पुकारते हैं और इसमें उन्हें बड़ा प्रमोद होता है ॥१३॥

यस्याः पाथसि नामविंशतिभिदा पूजाऽष्टधा क्षिप्यते
मन्त्रोच्चारण-बन्धुरेण युगपन्निर्ग्रन्थरूपात्मनाम् ।
श्रीमत्तीर्थकृतां यथायथमियं संसंपनीपद्यते
सम्मेदामृतवापिकेयमवताद्दिग्वाससां शासनम् ॥१४॥

जिसके पवित्र जलमें निर्ग्रन्थरूपके धारक श्रीतीर्थङ्करोंके एक साथ बीस नामोंसे सुन्दर मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वकज ल-चन्दनादि आठ

१ सन्। २ प्रति।

प्रकारकी पूजा सामग्री चढ़ाई जाती है और यथायोग्य रीतिसे उनकी पूजा सम्पन्न की जाती है वह सम्मेदगिरिकी अमृतवापिका दिगम्बर शासनकी सदा रक्षा करे—लोकमें उसे हमेशा स्थिर रक्खे।

सम्मेदगिरिकी अमृतवापिका (जलमन्दिरके जलकुण्ड) की यह महिमा है कि उसमें भव्यजन, सम्मेदगिरिसे निर्वाणप्राप्त बीस तीर्थङ्करोंके नामोंका उच्चारण करके उनके लिये अष्टद्रव्य चढ़ाते हैं और अपनी सातिशय भक्ति प्रकट करते हैं ॥१४॥

स्मार्त्ता:[१] पाणिपुटोदनादनमिति ज्ञानाय मित्र-द्विषो-
रात्मन्यत्र च साम्यमाहुरसकृन्नैर्ग्रन्थ्यमेकाकिताम् ।
प्राणि-क्षान्तिमद्वेषतामुपशमं वेदान्तिकाश्चापरे[२]
तद्विद्धि प्रथमं पुराण-कलितं दिग्वाससां शासनम् ॥१५॥

स्मृतिपाठक, ज्ञानप्राप्तिके लिये हाथोंमें रखकर भोजन करना, मित्र और शत्रु तथा अपने और परमें समता (एक-सा) भाव रखना, निर्ग्रन्थ (निर्वसन) रहना और एकाकी (अकेले) रहना इन बातोंका कथन करते हैं। तथा वेदान्ती, प्राणियोंपर शान्ति (दयाभाव) रखना, किसीसे द्वेष नहीं करना और उपशमभाव (मन्दकषाय) रखना बतलाते हैं सो यह सब पुराण-प्रतिपादित दिगम्बरोंका शासन है अर्थात् उक्त सब बातें दिगम्बर शासनमें सर्व प्रथम और मुख्यतया प्रतिपादित हैं।

यहाँ रचयिताका आशय है कि स्मृतिपाठकों और वेदान्तियों-ने भी दिगम्बर शासनको अपनाया है और इससे उसका महत्व प्रकट है ॥१५॥

---

१ स्मृतिपाठका: । २ आहु इति क्रिया अत्रापि योज्या ।

यस्य स्नानपयोऽनुलिप्तमखिलं कुष्टं दनोध्वस्यते
सौवर्णस्तवकेश(न)निर्मितमिव क्षेमङ्करं विग्रहम् ।
शश्वद्भक्तिविधायिनां शुभतमं चन्द्रप्रभः स प्रभुः
तीरे पश्चिमसागरस्य जयताद्दिग्वाससां शासनम्[1] ॥१६॥

जिनके अभिषेकजल (गन्धोदक) को शरीरमें लगानेसे भक्त-जनोंका समस्त कुष्ट नष्ट होजाता है और सम्पूर्ण शरीर सुवर्णमय सुन्दर गुच्छोंसे निर्मित हुए की तरह होजाता है तथा अत्यन्त शुभ (उत्तम) और क्षेमङ्कर (कल्याणकारी) बन जाता है, वह पश्चिम-समुद्रके तटपर प्रतिष्ठित श्रीचन्द्रप्रभप्रभु दिगम्बर शासनको जयवन्त करें ।

इस पद्यमें पश्चिम समुद्रके तटपर स्थित श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्रका यह अतिशय एवं प्रभाव बतलाया गया है कि उनके अभिषेक जलको लगानेसे समस्त कोढ नाश होजाता है और शरीर सर्वाङ्ग सुन्दर तथा सुवर्णमय बन जाता है, यह उनकी भक्ति करनेवालोंको प्रत्यक्ष फल मिलता है ॥१६॥

शुद्धे सिद्धशिलातले सुविमले पञ्चामृतस्नापिते
कर्पूरागुरु - कुंकुमादिकुसुमैरभ्यर्चिते सुन्दरैः ।
फुत्स्कार-फणापति-स्फुटफटा-रत्नावली-भासुरः
छायापार्श्वविभुः स भाति जयताद्दिग्वाससां शासनम्[2] ॥१७॥

जो पंचामृतोंसे अभिषिक्त, कपूर, धूप और केशरादिक सुन्दर पुष्पोंसे संपूजित, विमल और पवित्र सिद्धशिलातलपर शोभित हैं तथा

---

१ प्रति । २ प्रति ।

स्फुरायमान सहस्त्रफणाओंसे विशिष्ट धरणेन्द्रकी प्रकट होरही फणाओंकी रत्नावली (मणियों) की बृहद्ज्योतिसे भासमान हैं वह श्रीछाया-पार्श्वप्रभु दिगम्बर शासनकी जय करें।

इस पद्यमें छायापार्श्वप्रभुका अतिशय बतलाया गया है ॥१७॥

क्षाराम्भोधिपयः सुधाद्रव इव प्रत्यक्षमाऽऽस्वाद्यते
..................................रसकृत् यच्छायया संभरत् ।
पूतं(तः)पूततमः स पञ्चशत-कोदण्ड-प्रमाणः प्रभुः
श्रीमानादिजिनेश्वरो स्थिरयते दिग्वाससां शासनम् ॥१८॥

जिनकी छायाके पड़नेसे प्रतिबिम्बको धारण करता हुआ लवणसमुद्रका जल प्रत्यक्ष अमृतकी तरह स्वादु (मीठा) लगता है वह अत्यन्त पवित्र पाँचसौ धनुष प्रमाण श्रीआदिजिनेश्वरप्रभु दिगम्बर शासनको स्थिर करें।

जान पड़ता है लवण-समुद्रके किनारे कहीं श्रीआदिनाथ जिनेश्वरका कोई प्रसिद्ध जिनमन्दिर रहा है जिसमें पाँचसौ धनुषकी अवगाहनासे युक्त श्रीआदिनाथजिनकी सातिशय प्रतिमा प्रतिष्ठित थी और जिसका यह अतिशय था कि उसकी छाया लवणसमुद्रमें पड़नेसे उसका जल प्रत्यक्ष ही अमृतकी तरह मीठा मालूम होता था ॥१८॥

तिर्यञ्चोऽपि नमन्ति यं निज-गिरा गायन्ति भक्त्याशया
दृष्टे[1] यस्य पदद्वये शुभदृशो[2] गच्छन्ति नो दुर्गतिम् ।
देवेन्द्रार्चित-पाद-पङ्कज-युगः पावापुरे पापहा
श्रीमद्वीरजिनः स रक्षतु सदा दिग्वाससां शासनम् ॥१९॥

१ सति । २ सम्यग्दृष्टयः ।

जिन्हें तिर्यंच भी भक्तिपूर्वक अपनी वाणीद्वारा नमस्कार करते हैं और जिनके चरणद्वयके दर्शन कर लेनेपर भव्य-जीव दुर्गतिको प्राप्त नहीं होते तथा जो पावापुरमें इन्द्रद्वारा सम्पूजित हैं वह निष्पाप श्रीवीरजिनेन्द्र दिगम्बर शासनकी सदा रक्षा करें—लोकमें उसके प्रभावको हमेशा कायम रखें।

पावापुरमें श्रीवीरजिनेन्द्रकी जो प्रतिमा प्रतिष्ठित है उसका अतिशय यह है कि तिर्यंच भी उसे अपनी हार्दिक भक्ति प्रकट करते हैं तथा उसके दर्शन करनेवाले भव्योंको खोटी गतिकी प्राप्ति नहीं होती—वे उत्तम—देव-मनुष्यकी गतिको प्राप्त होते हैं ॥१९॥

सौराष्ट्रे यदुवंश-भूषण-मणेः श्रीनेमिनाथस्य या
मूर्त्तिर्मुक्तिपथोपदेशन-परा शान्ताऽऽयुधाऽपोहनात् ।
वस्त्राभरणैर्विना गिरिवरे[1] देवेन्द्र-संस्था(स्ना)पिता
चित्तभ्रान्तिमपाकरोतु जगतो दिग्वाससां शासनम्[2] ॥२०॥

यदुवंशभूषण श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरकी सौराष्ट्र (गुजरात) में गिरनार पर्वतपर जो आयुध, वस्त्र और आभरण रहित भव्य, शान्त तथा मोक्षमार्गका मूक उपदेश करने वाली मूर्ति सुप्रतिष्ठित है और जो देवेन्द्र द्वारा संस्था(स्ना)पित है वह संसारीजनके चित्तकी भ्रान्ति—अज्ञानको दूर करे और दिगम्बर शासनके माहात्म्यको लोकमें प्रसृत करे।

गिरनार पर्वतपर श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरकी मनोज्ञ और शान्त दिगम्बर जिनमूर्ति बनी हुई है। वह मूर्ति इतनी भव्य और चित्ता-

---

१ गिरिनारपर्वते। २ प्रति।

कर्षक है कि लोग वहाँ जाकर उसके बड़ी श्रद्धासे दर्शनादि करते हैं और उसके मूक उपदेशको सुनते हैं जिससे उनके चित्तको बड़ी शान्ति एवं निराकुलता प्राप्त होती है ॥२०॥

यस्याऽद्याऽपि सुदुन्दुभि-स्वरसलं पूजां सुराः कुर्वते
[1]भव्य-प्रेरित-पुष्प-गन्ध-निचयोऽध्यारोहति क्ष्मातले(लं) ।
नित्यं नूतन-पूजयाऽर्चित-तनुः श्रीवासुपूज्योऽव(व्य)भात्
चम्पायां परमेश्वरः सुखकरो दिग्वाससां शासनम् ॥२१॥

जिनकी आज भी देवगण दुदुन्दुभिके मनोहर स्वरके साथ यथेष्ट पूजा करते हैं तथा भव्योंद्वारा जिनपर चढ़ाये गये फूलोंकी भारी गन्ध पृथिवीपर फैल जाती है और जो चम्पापुरीमें नित्य नई पूजाओंसे पूजित होते हुए शोभित हैं वह चम्पापुरीके परम सुखकारी श्री वासुपूज्य परमेश्वर दिगम्बर शासनको प्रवृद्ध करें।

चम्पापुरीके श्रीवासुपूज्यजिनकी यह महिमा है कि इस समय भी देव उनकी बड़ी भक्तिके साथ पूजा-अर्चा करते हैं तथा भव्यजन उल्लेखनीय भारी पुष्प चढ़ाते हैं ॥२१॥

तिर्यग्वेषमुपास्य पश्यत तपो वैशेषिकेना(णा)ऽऽदरात्
भव्योत्सृष्ट-कणोत्करस्यमसम-ग्रासं सदा कुर्वता ।
चक्रे घोरमनन्यचीर्णमखिलं कर्म्माऽऽनिहन्तुं त्वरा
तत्तेनाऽपि समाश्रितं सुविशदं दिग्वाससां शासनम् ॥२२॥

देखो, वैशेषिकमतप्रवर्त्तक कणाद महर्षिने तिर्यंच (कपोत)-का वेष धारणकर भव्यजनों (दयालु लोगों) के द्वारा डाले गये

---

१ यस्येति अत्रापि सम्बन्धो (सम्बद्ध्यत इति) ज्ञेयः ।

कणोंके न्यूनाधिक ग्रासों (कौरों-कवलों) को चुनते हुए समस्त कर्मोंको जल्दी नाश करनेके लिये असाधारण एवं घोर तप किया। अतः ज्ञात होता है कि उन्होंने भी दिगम्बरोंके शासनका महत्व जानकर उसका समाश्रय लिया ॥२४॥

जैनाभासमतं विधाय कुधिया यैरप्यदो मायया
ह्रस्वारम्भ-प(गृ)हाश्रयो हि विविधग्रासः स वासा(सां)पतिः।
भाण्डोद्दण्डकरोऽर्च्यते स च पुनः निर्ग्रन्थलेशस्ततो
युक्त्या तैरपि साधु भाषितमिदं दिग्वाससां शासनम् ॥२३॥

जिन्होंने भी दुर्बुद्धिसे माया (छल) द्वारा अमुक जैनाभासमत को उत्पन्न कर अल्प आरम्भ और गृहरूप अल्प परिग्रहका आश्रय लिया, तथा विविध ग्रासोंको पसंद किया और वस्त्रोंके स्वामी बने एवं भाण्ड (पात्र) तथा उन्नत दण्डको हाथमें लेना मान्य किया और इन सबको निर्ग्रन्थलेश (निर्ग्रन्थता—अपरिग्रह) बतलाया है उन्होंने भी युक्तिसे—एक तरीकेसे दिगम्बर शासनको साधु कहा है। अर्थात् उनके द्वारा भी दिगम्बर शासनकी महत्ता स्वीकार की गई है।

प्रतीत होता है कि यहाँ रचयिताने श्वेताम्बर मतका उल्लेख किया है और बतलाया है कि उन्होंने भी अल्प वस्त्र, पात्र और दण्डको आंशिक निर्ग्रन्थता बतलाकर उस (निर्ग्रन्थता) के महत्वको मान्य किया है और इस तरह दिगम्बर शासनका प्रभाव उनपर भी प्रकट है ॥२३॥

नाऽभुक्तं किल कर्म्मजालमसकृत् संहन्यते जन्मिनां
यौगा इत्यवबुध्य भस्म-कलितं देहं जटा-धारिणम्।

मुद्भस्मस्थाचरणं च भैक्ष्यमशनं ये चक्रिरे शैवनि
मोक्षं हि प्रथमं प्रवन्द्यममलं दिग्वाससां शासनम् ॥२४॥

'प्राणियोंका कर्मजाल अनेक जन्मोंमें भी बिना भोगे नाश नहीं होता'[1] ऐसा मानकर जिन शैवों (शैवों-कापालिकों) ने शरीरमें भस्म (राख) लगाना, जटा रखना, सिरपर पैरोंको स्थापित करना और भिक्षावृत्तिसे भोजन लेना आदि आचरणोंका विधान किया है, प्रकट है कि उन्होंने भी निर्मल दिगम्बरशासनको प्रथम वन्दनीय कहा है—अर्थात् उनके द्वारा भी दिगम्बरशासनकी कितनी ही चर्याको स्वीकार कर उसके महत्वको मान्य किया गया है ॥२४॥

मूर्त्तिः कर्म्म शुभाऽशुभं हि भविनां भुंक्ते पुनश्चेतनः
शुद्धो निर्मल-निःक्रियाऽगुण इहाऽकर्त्तेति[2] सांख्योऽब्रवीत् ।
संसर्गस्तवदृष्टरूपजनितस्तेनाऽपि संमन्यते
वै तेनाऽपि समाश्रितं सुविशदं दिग्वाससां शासनम् ॥२५॥

मूर्त्ति (पुद्गलप्रकृति)— जीवोंके शुभाशुभ कर्मकी कर्त्री है और चेतन (पुरुष—आत्मा) उसका भोक्ता है, शुद्ध है, निर्मल है, निष्क्रिय

---

१ 'नाभुऽक्तं क्षीयते कर्म कल्प-कोटिशतैरपि ।'

२ सांख्योंके सिद्धान्तकी प्रतिपादक सांख्यकारिकागत निम्न कारिकाएँ ज्ञातव्य हैं:—

"तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य ।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च ॥१९॥
तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिंगम् ।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्तेव भवत्युदासीनः ॥२०॥
पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥२१॥

है, निर्गुण है तथा अकर्त्ता है, इन दोनोंका अदृष्टरूपसे संसर्ग—संयोग होता है, ऐसा सांख्योंने कहा और माना है सो सुस्पष्ट है कि उन्होंने भी दिगम्बरशासनका आश्रय लिया है।

सांख्योंने मूलमें दो तत्त्व स्वीकार किये हैं—१ प्रकृति और २ पुरुष। प्रकृति जड एवं पुद्गल है और पुरुष चेतन एवं साक्षी (दृष्टा) है। प्रकृति पुण्यपापादि कर्मकी कर्त्री है और पुरुष (आत्मा) भोक्ता है, पुष्करपलाशकी तरह निर्लेप तथा अबन्धक है। किन्तु दोनोंमें उपकार्यपकारकभाव, जो कि अदृष्टरूप है, होनेसे संसर्ग होता है और उससे संसारादि होता है। दिगम्बरशासनमें भी मूलमें दो तत्त्व स्वीकार किये गये हैं¹—१ जीव और २ अजीव। जीव चेतन तथा अपने चैतन्यभावोंका भोक्ता है निश्चयनयसे अजीव-पुद्गलकर्मोंका अकर्ता तथा अबन्धक है, शुद्ध है और निर्मल है। और अजीव जड एवं पुद्गल है पुण्यपापादि शुभाशुभकर्मोंका कर्ता है। इन दोनोंके संयोगसे,

---

१ (क) 'जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।'- द्रव्यसंग्रह गा. १

(ख) 'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१५॥
अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥२३॥
अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदाऽरूवी
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तं पि ॥३८॥'
— समयसार

(ग) 'संयोगमूला जीवेन प्राप्ता दुःखपरम्परा।'—लघुसामायिकपाठ।
इत्यादि दिगम्बर जैन शासनके सिद्धान्तशास्त्र द्रष्टव्य हैं।

जो रागादि अदृष्ट चेतनभावकर्मके निमित्तसे होता है, दुःखपरम्परारूप संसारादि होता है और संयोगके न रहनेपर आत्माको कैवल्य एवं निर्वाणकी प्राप्ति होती है और इस तरह स्पष्ट है कि सांख्योंद्वारा भी कितनी ही बातोंमें दिगम्बरशासन समाश्रित हुआ है और इसलिये उसका प्रभाव प्रकट है ॥२५॥

चार्वाकैश्चरितोज्झितैरभिमतो जन्मादि-नाशान्तको[1]
जीवः क्ष्मादिमयस्तथाऽस्य न पुनः स्वर्गापवर्गौ क्वचित् ।
न्यायाऽऽयातवचोऽनुसार-धिषणैरात्मान्तरं मन्यते
यैस्तैव(स्तैर्वो)चितमेव(त) देव परमं दिग्वाससां शासनम् ॥२६॥

चारित्ररूपधर्मका तिरस्कार करनेवाले जिन चार्वाकोंने जीवको जन्म और नाशवान् तथा पृथिवी आदि चार भूतरूप माना है और स्वर्ग तथा मोक्ष उसके स्वीकार नहीं किये फिर भी न्यायप्राप्त वचनानुसारी बुद्धिसे आत्मान्तर—दूसरा आत्मा (जीव) उन्होंने माना है सो यह उचित ही है और इस तरह चार्वाकोंने भी दिगम्बर शासनका आश्रय लिया है।

तात्पर्य यह कि आत्माबहुत्वको स्वीकार करके चार्वाकोंने भी दिगम्बरशासनके सिद्धान्त—आत्माबहुत्वको माननेसे इस शासनके महत्वको अङ्गीकार किया है ॥२६॥

श्रीदेवीप्रमुखाभिरर्चितपदाम्भोजः सुरा (मुदा)पि क्वचित्
कल्याणेऽत्र निवेशितः पुनरतो नो चालितुं शक्यते ।

---

१ जन्म आदौ यस्य स जन्मादिः । नाशोऽन्ते यस्यासौ नाशान्तः । पश्चात् कर्मधारयः । स्वार्थे कः ।

य: पूज्यो जलदेवताभिरतुल-सन्नर्मदा-पाथसि
श्रीशान्तिर्विमलं स रक्षतु सदा दिग्वाससां शासनम् ॥२७॥

श्रीदेवी आदिके द्वारा जिनके चरणकमलोंकी पूजा की गई और हर्षके साथ किसी कल्याणकमें जिनकी स्थापना की गई और फिर जो उस स्थानसे चलायमान न किये जासके तथा नर्मदाके जलमें जलदेवताओंद्वारा जो पूजित हुए वह श्रीशान्ति जिनेश्वर प्रभु निर्मल दिगम्बर शासनकी सदा रक्षा करें।

नर्मदाके श्रीशान्तिजिनका यह अतिशय है कि श्रीदेवी आदिके द्वारा पूजे जाकर किसी एक कल्याणकस्थानपर स्थापित होजानेपर फिर वे वहाँसे चलायमान न हो सके और जलदेवताओंद्वारा नर्मदाके जलमें वही पूजित हुए ॥२७॥

पूर्वं याऽऽश्रममाजगाम सरितां नाथास्तु दिव्या शिला
तस्यां[1] देवगणान्[2] द्विजस्य[3] दधत[4]स्तस्थौ जिनेशः स्थिरम् ।
कोपाद्विप्रजनावरोधनगरे देवैः प्रपूज्याम्बरे
दध्रे यो मुनिसुव्रतः स जयताद्दिग्वाससां शासनम् ॥२८॥

जो बृहन्नद (गोदावरी) की दिव्यशिला पहले आश्रमको प्राप्त हुई उस शिलापर देवगणोंको धारण करनेवाले एक द्विज (ब्राह्मण) के कोपसे जो जिनेन्द्र प्रभु उस शिलापर स्थिर होकर ठहर गये—वहाँसे टस-से-मस न हुए और बादको देवोंद्वारा आकाशमें पूजित होकर विप्रजनोंके अवरोधनगरमें विराजमान हुए ? वह श्रीमुनिसुव्रतजिन दिगम्बरोंके शासनकी जय करें।

---

१ शिलायां । २ हरिहरकमलासनादिदेवसमूहान् । ३ ब्राह्मणस्योपरि । ४ तस्यां शिलायां धारयतः ।

कहते हैं कि एक दिव्यशिला गोदावरीके किनारे रही उसपर कोई एक ब्राह्मण अपने इष्ट हरिहरादि देवोंको स्थापित करना चाहता था; परन्तु उसपर मुनिसुव्रतजिन ही स्थिर होकर ठहरे—अन्य देव उसपर नहीं ठहर सके। बादको जब मुनिसुव्रतजिनका यह अतिशय लोकमें प्रकट हुआ तो देवोंने उन्हें आकाशमें और विप्रों तथा इतर जनोंने अवरो[illegible]में बड़े उत्साह और [illegible] पूजा और इस तरह मुनिसुव्रतजिनका यह अतिशय लोकमें भारी ख्यातिको प्राप्त हुआ॥२८॥

जायानामपरिग्रहोऽपि[1] भविनां भूयाद्यदि श्रेयसे
तत्कस्यास्ति[2] न सोऽधमोऽपि विधिना ह्रस्वस्तदर्थं मतः ।
क्षीणारम्भपरिग्रहं शिवपदं को वा न वा मन्यते
इत्यालौकिकभाषितं विजयते दिग्वाससां शासनम् ॥२९॥

स्त्रियोंका अपरिग्रह भी जीवोंके लिये कल्याणकारी है। अतः वह थोड़ा भी किस जीवका कल्याणकारी नहीं है अपितु है ही और इसलिये वह कम भी अपरिग्रह यथाविधि हरएकके कल्याणके लिये माना गया है। 'आरम्भ और परिग्रहसे रहित शिवपद (मोक्ष) है' यह सभी लौकिकजनों (आम लोगों) का कथन है उसे कौन नहीं मानता? अर्थात् प्रायः सभी उसे मानते हैं। और इस तरह भी दिगम्बर शासन विजयको प्राप्त होता है—उसका व्यापक प्रभाव प्रकट है।

लोकमें संसारी जीवोंको सभी सांसारिक पदार्थोंसे मोह होता है उनमें स्त्रीविषयक मोह और ज्यादा होता है। जो इस मोहका यथा-

---

१ अथवा जायानां अपरिग्रहः ह्रस्वोऽपि कस्य तदर्थं श्रेयोऽर्थं न मतोऽस्ति अपि तु मतोऽस्ति। २ तत् तस्मात् स कस्य भविनः श्रेयसे न अस्ति अपि तु अस्त्येव।

विधि अल्प भी त्याग करते हैं उनके लिये उतना भी कल्याणकारक होता है और इसलिये इस मोहका त्याग हरएकका कल्याणकारी माना गया है। आम लोग भी इस बातको कहते हुए पाये जाते हैं कि 'आरम्भ और परिग्रहकी झंझटसे मुक्ति पाना ही शिवपद है—मोक्ष है—निराकुलतारूप सुखकी प्राप्ति है।' इस प्रकार दुनिया निर्ग्रन्थता-को ही महत्व देती है और इसलिये दिगम्बर शासन पूर्णतः विजयकी क्षमता रखता है ॥२९॥

सिक्ते सत्सरितोऽम्बुभिः शिखरिणः सम्पूज्य देशे वरे
सानन्दं विपुलस्य शुद्धहृदयैरित्येव भव्यैः स्थितैः ।
निर्ग्रन्थं परमर्हतो यदमलं बिम्बं दरीदृश्यते
यावद्द्वादशयोजनानि तदिदं दिग्वाससां शासनम् ॥३०॥

निकटवर्ती नदीके पवित्र जलसे अभिषिक्त विपुलगिरिके श्रेष्ठ प्रदेशमें स्थित शुद्धहृदयवाले भव्योंद्वारा बड़े आनन्दसे पूजित होकर जो अरहन्तदेवका निर्ग्रन्थ एवं निर्मल दिगम्बर जिनबिम्ब १२ योजन तक देखा जाता है सो यह दिगम्बरशासनका माहात्म्य है।

विपुलाचलके सुन्दर प्रदेशमें जो आभूषणादिरहित दिगम्बर जैनमूर्ति स्थित है उसका यह अतिशय है कि वह १२ योजन तक दिखती है ॥३०॥

धर्मोऽधर्म-शरीर-जन्य-जनक-स्वर्गापवर्गादिके
सर्वस्मिन् क्षणिके न कस्यचिदहो तद्बन्ध-मोक्ष-क्षणः ।
इत्याऽऽलोच्य सुनिर्मलेन मनसा तेनाऽपि यन्मन्यते
बौद्धेनाऽऽत्मनिबन्धनं हि तदिदं दिग्वाससां शासनम् ॥३१॥

जो मानते हैं कि धर्म-अधर्म, शरीर, जन्य-जनक; स्वर्ग-अपवर्ग आदि सब क्षणिक हैं न किसीके बन्ध है और न किसीके मोक्ष उन बौद्धोंने भी निर्मल मनसे आत्मतत्त्वको चित्सन्ततिके रूपमें माना है और यह दिगम्बरशासन है।

इस पद्यका आशय यह है कि सभी पदार्थोंको क्षणिक मानने वाले बौद्धोंने भी आखिर आत्मतत्त्वको किसी न किसी रूपमें माना है और आत्माका यह मानना आंशिकरूपमें दिगम्बरशासन है ॥३१॥

यस्मिन् भूरि[1]विधातुरेकमनसो[2] भक्तिं नरस्याऽधुना
तत्कालं जगतां त्रयेऽपि विदिता जैनेन्द्रबिम्बालयाः ।
प्रत्यक्षा इव भान्ति निर्मलदृशो देवैर्भृशाऽभ्यर्चिता
विन्ध्ये भूभृति भासुरेऽतिमहिते[3] दिग्वाससां शासनम् ॥३२॥

सुप्रसिद्ध अथवा अत्यन्त पूजित तथा देदीप्यमान विन्ध्यगिरिपर जो जगत्प्रसिद्ध और इन्द्रद्वारा अर्चित सुवर्णादि विशिष्ट धातुओंसे बने हुए अगणित जिनमन्दिर विद्यमान हैं उनकी अनन्यभक्ति करने वाले सम्यग्दृष्टि मनुष्यको वे आज भी तत्काल प्रत्यक्षकी तरह प्रतिभासित होते हैं सो यह दिगम्बरशासनका ही अतिशय है।

विन्ध्यगिरिपर प्राचीन समयमें अनेक मनोज्ञ चैत्यालय बने थे, ऐसा जैन इतिहास और शिलालेखोंसे प्रकट है और जो रचयिताके समयमें वहाँ मौजूद थे। उनका यह अतिशय था कि वे सम्यग्दृष्टि भक्त मनुष्योंको सदा प्रत्यक्षसे मालूम होते थे ॥३२॥

---

१ विशिष्टा धातुर्विधातुः सुवर्णरूप्यताम्रगैरिकादिः जातावेक वचनम् ।
२ भक्तिं प्रति एकचित्तस्य । ३ क सति अतिमहिते अति पूजिते सति ।

आस्ते सम्प्रति मेदपाटविषये ग्रामो गुणग्रामभू-
र्नाम्ना नागफणीति तत्र कृषता लब्धा शिला केनचित् ।
स्वप्नं वृद्धमहार्जिकामिह[1] ददौ[2] स्याकारनिर्मापणे
स श्रीमल्लिजिनेश्वरो विजयते दिग्वाससां शासनम् ॥२३॥

मेदपाट (मेवाड़)देशमें 'नागफणी' नामका एक गाँव है जो गुणीजनों और गुणोंकी खानि है। वहाँ किसीको खेत जोतते हुए एक शिला मिली। उस शिलापर जिन्होंने अपना आकार बनवानेके लिये वृद्धमहार्जिकाको स्वप्न दिया वह श्रीमल्लिजिनेश्वर दिगम्बरशासनकी विजय करें।

कहा जाता है कि मेवाड़के नागफणी नामक गाँवमें एक शिलाके ऊपर श्रीमल्लिजिनेश्वर प्रकट हुए और उन्होंने स्वप्न दिया कि वहाँ उनका जिनालय बनाया जाय। बादको वहाँ विशाल जिनमन्दिर बनाया गया और इस तरह वे लोकमें 'नागफणीके मल्लिजिनेश्वर'के नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥२३॥

श्रीमन्मालवदेश-मङ्गलपुरे म्लेच्छैः प्रतापागतैः
भग्ना मूर्त्तिरथोऽभियोजित-शिराः[3] सम्पूर्णतामाऽऽययौ ।
यस्योपद्रवनाशिनः कलियुगेऽनेकप्रभावैर्युतः
स श्रीमानभिनन्दनः स्थिरयते दिग्वाससां शासनम् ॥२४॥

मालवा देशके मङ्गलपुर नगरमें म्लेच्छोंके द्वारा, जो अपने प्रभावको फैलाते हुए वहाँ पहुँचे, श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्रकी मूर्ति जब

---

१ शिलायां। २ अथ यः इति अध्याहारः। ३ सती।

तोड़ दी गई तो वह पुनः जुड़ गई और पूर्ण अवयवविशिष्ट होगई। बादको उनके प्रभावसे नाना उपद्रव दूर हुए वह अनेक प्रभावयुक्त श्रीअभिनन्दन प्रभु दिगम्बरशासनको सुदृढ़ करें।

यहाँ मालवाके मङ्गलपुरस्थ श्रीअभिनन्दन जिनेन्द्रका यह अतिशय बतलाया है कि आततायी म्लेच्छोंने जब उनकी मूर्तिको तोड़ दिया तो वह मूर्ति तुरन्त जुड़ गई और पूर्ववत् सम्पूर्ण होगई। इस अतिशयसे और उपद्रवोंको दूर करने आदि अनेक प्रभावोंसे दिगम्बर-शासनकी महिमा प्रकट हुई और इसलिये श्रीअभिनन्दन जिनके द्वारा उसके लोकमें सदा बने रहनेकी रचयिताने कामना की है ॥३४॥

प्रशस्ति

इति[1] हि मदनकीर्तिश्चिन्तयन्नाऽऽत्मचित्ते
विगलति सति रात्रेस्तुर्यभागार्द्धभागे।
कपट-शत-विलासान् दुष्टवागन्धकारान्
जयति विहरमाणः साधुराजीव-बन्धुः ॥३५॥

इस तरह यह मदनकीर्ति साधु (यति) इन उपर्युक्त चौंतीस पद्योंद्वारा कथित वस्तुका—दिगम्बरशासनके प्रस्तुत माहात्म्यका—रात के चौथे पहरके आधे भागके बीत जानेपर अपने चित्तमें चिन्तन करता और जीवमात्रके प्रति बन्धुत्वकी भावनाको लिये विहार करता हुआ कपटजालों एवं दुष्ट वचनोंको जीतनेमें तत्पर रहता है।

इस पद्यके द्वारा मुनिमदनकीर्तिने अपनी कुछ आत्मचर्या—शान्तवृत्ति और वीतरागपरिणति—का संसूचन (कथन) किया है और अपने नामोल्लेखपूर्वक पूर्वोक्त वक्तव्यका उपसंहार किया है ॥३५॥

---

१ इति पूर्वोक्तचतुस्त्रिंशत्काव्योक्तार्थम्।

शासनचतुस्त्रिंशिकाका पद्यानुक्रम

आस्ते सम्प्रति	३३	यस्मिन् भूरिविधातु-	३२
इति हि मदनकीर्ति-	३५	यस्य स्नानपयो-	१६
क्षाराम्भोधि पयः	१८	यस्याद्यापि	२१
चार्वाकैश्चरितोज्झितै-	२६	यस्याः पाथसि	१४
छायानामपरिग्रहोऽपि	२६	यः पूर्वं भुवनैक-	६
जैनाभासमतं विधाय	२३	यं दृष्ट्वा न हि पश्यति	८
तिर्यग्वेषमुपास्य	२२	योगा यं परमेश्वरं	१०
तिर्यञ्चोऽपि नमन्ति	१६	लोकैः पञ्चशतीमितैर-	७
द्वापञ्चाशदनूत-	६	वासं सार्थपतेः पुरा	४
धर्माधर्म-शरीर-	३१	शुद्धे सिद्धशिलातले	१७
नाभुऽर्का किल	२४	श्रीदेवीप्रमुखाभि-	२७
पत्रं यत्र विहायसि	३	श्रीमन्मालवदेश-	३४
पाताले परमादरेण	१२	सानन्दं निधयो	५
पादांगुष्ठनखप्रभासु	२	सिक्तं सत्चरितोऽम्बुभिः	३०
पूर्वं याऽऽश्रममाजगाम	२८	सोपानेषु सकष्ट-	११
मूर्तिः कर्म शुभाऽशुभं	२५	सौराष्ट्रे यदुवंश-	२०
यत्तापत्रयसाद्वालोयं	१	स्मार्ताः पाणिपुटो-	१५
यद्दीपस्य शिरसेव	१	स्फुटेति द्विजनायकैः	१३

परिशिष्ट

शासनचतुस्त्रिंशिकामें उल्लिखित तीर्थ और उनका कुछ परिचय

इस शासनचतुस्त्रिंशिकामें जिन तीर्थों एवं सातिशय दिगम्बर जिनबिम्बोंका उल्लेख हुआ है वे २६ हैं। उनमें ८ तो सिद्धतीर्थ हैं और १८ अतिशयतीर्थ हैं। उनका नीचे कुछ ऐतिहासिक परिचय दिया जाता है।

सिद्धतीर्थ—

जहाँसे कोई पवित्र आत्मा मुक्ति अथवा निर्वाण प्राप्त करता है उसे जैनधर्ममें सिद्धतीर्थ कहा गया है। इस पुस्तकमें इसके रचयिता यतिपति मदनकीर्तिने ऐसे ८ सिद्धतीर्थोंका सूचन किया है। वे ये हैं:—

१ कैलासगिरि, २ पोदनपुर, ३ सम्मेदशिखर (पार्श्वनाथहिल), ४ पावापुर, ५ गिरनार (ऊर्जयन्तगिरि), ६ चम्पापुरी, ७ विपुलगिरि और ८ विन्ध्यगिरि।

१. कैलासगिरि

भारतीय धर्मोंमें विशेषतः जैनधर्ममें कैलासगिरिका बहुत बड़ा महत्व बतलाया गया है। युगके आदिमें प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव (आदिनाथ)ने यहाँसे मुक्ति-लाभ किया था। उनके बादमें नागकुमार, बालि और महाबालि आदि मुनिवरोंने भी यहींसे सिद्ध पद पाया था। जैसा कि विक्रमकी छठी शताब्दीके सुप्रसिद्ध विद्वानाचार्य

पूज्यपाद (देवनन्दि)की संस्कृत निर्वाणभक्तिसे और अज्ञातकर्तृक प्राकृत निर्वाणकाण्डसे[1] प्रकट है:—

(क) कैलासशैलशिखरे परिनिर्वृतोऽसौ
शैलेशिभावमुपपद्य वृषो महात्मा।—नि० भ० श्लो० २२।

(ख) अट्ठावयम्मि उसहो.—नि० का० गा० नं० १।
णागकुमारमुणिंदो वालि महावालि चेव अज्झेया।
अट्ठावय-गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं॥—नि. का. १५।

मुनि उदयकीर्तिने भी अपनी 'अपभ्रंश निर्वाणभक्ति'में कैलासगिरिका और वहाँसे भगवान ऋषभदेवके निर्वाणका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

(ग) कइलास-सिहरि सिरि-रिसहनाहु.
जो सिद्धउ पयडमि धम्मलाहु।

यह ध्यान रहे कि अष्टापद भी इसी कैलासगिरिका दूसरा नाम है। जैनेतर इसे 'गौरीशङ्कर पहाड़' भी कहते हैं। भगज्जिनसेनाचार्यके आदिपुराण तथा दूसरे दिगम्बर ग्रन्थोंमें इसकी बड़ी महिमा गाई गई है। श्वेताम्बर और जैनेतर सभी इसे अपना तीर्थ मानते हैं। इससे इसकी व्यापकता और महानता स्पष्ट है। किसी समय यहाँ भगवान् ऋषभदेवकी बड़ी ही मनोज्ञ और आकर्षक सातिशय सुवर्णमय दिगम्बर जिनमूर्त्ति प्रतिष्ठित थी, जिसका उल्लेख मदनकीर्तिजीने इस रचनाके प्रथम पद्यमें सबसे पहले और बड़े गौरवके साथ किया है

१ इसके रचयिता कौन हैं और यह कितनी प्राचीन रचना है? यह अभी अनिश्चित है फिर भी वह सात आठ-सौ वर्षसे कम प्राचीन नहीं मालूम होती।

और 'अद्य' शब्दका प्रयोग करके अपने समयमें उसका होना तथा देवोंद्वारा भी उसकी वन्दना किया जाना खासतौरसे सूचित किया है। मालूम नहीं, अब यह मूर्ति अथवा उसके चिह्नादि वहाँ मौजूद हैं या नहीं? पुरातत्वप्रेमियोंको इसकी खोज करनी चाहिए।

२. पोदनपुर

पोदनपुरकी स्थितिके सम्बन्धमें अनेक विद्वानोंने विचार किया है। डाक्टर जैकोबी विमलसूरिकृत 'पउमचरिय'के आधारसे पश्चिमोत्तरसीमाप्रान्तमें स्थित 'तक्षशिला'को पोदनपुर बतलाते हैं और डाक्टर गोविन्द पै हैदराबाद-बरारमें निजामाबाद जिलेके 'बोधन' नामक एक ग्रामको पोदनपुर कहते हैं। बा. कामताप्रसादजी जैनने इन दोनों मतोंकी समीक्षा करते हुए जैन और जैनेतर साहित्यकी साक्षी द्वारा प्रमाणित किया है[1] कि तक्षशिला पोदनपुरसे भिन्न पश्चिमोत्तरसीमाप्रान्तमें अवस्थित था और पोदनपुर दक्षिणभारतमें गोदावरीके तटपर कहीं बसा हुआ था। भगवज्जिनसेनके परमशिष्य और विक्रमकी ९वीं शताब्दीके विद्वानाचार्य गुणभद्रने अपने उत्तरपुराणमें स्पष्ट लिखा है[2] कि 'भारतके दक्षिणमें सुरम्य (अश्मक) नामका एक बड़ा (महान्) देश है उसमें पोदनपुर नामक विशाल नगर है जो उस देशकी राजधानी है'। श्रीकामताप्रसादजीने यह भी बतलाया है कि जैनपुराणोंमें पोदनपुरको पोदन, पोदनापुर, पौदन और पौदन्य तथा बौद्धग्रन्थोंमें

---

१ देखो, 'पोदनपुर और तक्षशिला' शीर्षक लेख, 'जैन एन्टीक्वेरी' भा० ४ कि० ३।

२ जम्बूविभूषणे द्वीपे भरते दक्षिणे महान्।
सुरम्यो विषयस्तत्र विस्तीर्णं पोदनं पुरं॥

दक्षिणापथके अश्मक देशकी राजधानी पोतन या पोतलि एवं हिन्दू-ग्रन्थ भागवतपुराणमें इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंकी अश्मक देशकी राजधानी पौदन्य कहा गया है और वह प्राचीन समयमें एक विख्यात नगर रहा है। अस्तु।

जैन इतिहासमें पोदनपुरका उल्लेखनीय स्थान है। आदिपुराण आदि जैनग्रन्थों और अनेक शिलालेखोंमें[1] वर्णित है कि आदि-तीर्थङ्कर ऋषभदेवके दो पुत्र थे—भरत और बाहुबलि। ऋषभदेव जब संसारसे विरक्त हो दीक्षित हुए तो उन्होंने भरतको अयोध्याका और बाहुबलिको पोदनपुरका राज्य दिया और इस तरह भरत अयोध्या-के और बाहुबलि पोदनपुरके राजा हुए। कालान्तरमें इन दोनों भाइयोंका युद्ध हुआ। युद्धमें बाहुबलिकी विजय हुई। परन्तु बाहुबलि संसारकी दशा[2] देखकर राज्यको त्याग तपस्वी हो गये और कठोर तपकर पोदनपुरमें उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त करके निर्वाण-लाभ किया। बादको सम्राट् भरतने अपने विजयी अद्भुत त्यागी तथा अद्वितीय तपस्वी और इस युगमें सर्वप्रथम परमात्मपद एवं परिनिर्वृति प्राप्त करनेवाले अपने इन आदर्श भाईकी यादगारमें पोदनपुरमें ५२५ धनुष-प्रमाण उनकी शरीराकृतिके अनुरूप अनुपम मूर्ति स्थापित कराई जो बड़ी ही मनोज्ञ और लोकविश्रुत हुई। तबसे पोदनपुर सिद्धतीर्थ और अति-शयतीर्थके रूपमें जैनसाहित्यमें विश्रुत है। आचार्य पूज्यपादने अपनी निर्वाणभक्तिमें उसका सिद्धतीर्थके रूपमें समुल्लेख किया है। यथा—

१ देखो, शिलालेख नं० ८५ आदि, जो विन्ध्यगिरिपर उत्कीर्ण है।
—(शि० सं० पृ० १६६)।

२ वह यह कि राज्य जैसे जघन्य स्वार्थके लिये भाई-भाई भी लड़ते हैं और एक दूसरेकी जानके दुश्मन बन जाते हैं।

(क) विन्ध्ये च पौदनपुरे वृषदीपके च ॥२९॥

× × ×

ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः
स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ॥३०॥

'निर्वाणकाण्ड' और मुनि उदयकीर्तिकृत 'अपभ्रंशनिर्वाण-भक्ति' में भी पौदनपुरके बाहुबली स्वामीकी अतिशय श्रद्धाके साथ वन्दना की गई है। यथा—

(ख) बाहूबलि तह वंदमि पोदनपुर हत्थिनापुरे वंदे।
संती कुंथु व अरिहो वाराणसीए सुपास पासं च ॥ गा. नं. २१

(ग) बाहुबलिदेउ पोयणपुरंमि, हउं वंदमि माहसु जम्मि जम्मि।

ऐसा जान पड़ता है कि कितने ही समयके बाद बाहुबलिस्वामीकी उक्त मूर्तिके जीर्ण होजानेपर उसका उद्धारकार्य और उस जैसी उनकी नयी मूर्तियाँ वहाँ और भी प्रतिष्ठित होती रही हैं। मदनकीर्तिके समयमें भी पौदनपुरमें उनकी अतिशयपूर्ण विशाल मूर्ति विद्यमान थी, जिसकी सूचना उन्होंने 'अद्यापि प्रतिभाति पोदनपुरे यो वन्द्यवन्द्यः स वै' *शब्दोंद्वारा की है और जिसका यह अतिशय था कि भव्योंको उनके चरणनखोंकी कान्तिमें अपने कितने ही आगे-पीछेके भव प्रतिभासित होते थे। परन्तु मदनकीर्तिके प्रायः समकालीन अथवा कुछ पूर्ववर्ती कन्नडकवि पं. बोप्पणद्वारा लिखित एक शिलालेख नं. ८५ (२३४)में, जो ३२ पद्यात्मक कन्नड रचना है और जो विक्रम संवत् १२३७ (शक सं. ११०२)के लगभगका उत्कीर्ण है, चामुण्डरायद्वारा निर्मित दक्षिण गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके निर्माणका इतिहास देते हुए बतलाया*

है कि चामुण्डरायको उक्त पोदनपुरके बाहुबलीकी मूर्तिके दर्शन करनेकी अभिलाषा हुई थी और उनके गुरुने उसे कुक्कुड सर्पोंसे व्याप्त और झाड़ों इनसे आच्छादित होनेसे उसका दर्शन होना अशक्य तथा अगम्य बतलाया था और तब उन्होंने जैनबिद्री (श्रवणबेल्गोल) में उसी तरहकी उनकी मूर्ति बनवाकर अपनी दर्शनाभिलाषा पूर्ण की थी। अतः मदनकीर्तिकी उक्त सूचना विचारणीय है और विद्वानोंको इस विषयमें खोज करनी चाहिये।

उपर्युक्त उल्लेखोंपरसे प्रकट है कि प्राचीन कालमें पोदनपुरके बाहुबलीका बड़ा माहात्म्य रहा है और इसलिये वह तीर्थक्षेत्रके रूपमें जैनसाहित्यमें खासकर दिगम्बर साहित्यमें उल्लिखित एवं मान्य है।

३. सम्मेदशिखर

सम्मेदशिखर जैनोंका सबसे बड़ा तीर्थ है और इसलिये उसे 'तीर्थराज' कहा जाता है। यहाँसे चार तीर्थङ्करों (ऋषभदेव, वासुपूज्य, अरिष्टनेमि और महावीर)को छोड़कर शेष २० तीर्थङ्करों और अगणित मुनियोंने सिद्ध-पद प्राप्त किया है। इसे जैनोंके दोनों सम्प्रदाय (दिगम्बर और श्वेताम्बर) समानरूपसे अपना पूज्य तीर्थ मानते हैं। पूज्यपाद देवनन्दिने अपनी 'संस्कृतनिर्वाणभक्ति'में लिखा है कि बीस तीर्थङ्करोंने यहाँसे परिनिर्वाणपद पाया है। यथा—

(क) शेषास्तु ते जिनवरा जित-मोहमल्ला
ज्ञानार्क-भूरिकिरणैरवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारितसौख्यनिष्ठं
सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः ॥२५॥

इसी तरह 'प्राकृतनिर्वाणकाण्ड' और मुनि उदयकीर्तिकृत 'अपभ्रंशनिर्वाणभक्ति'में भी सम्मेदपर्वतसे बीस जिनेन्द्रोंके निर्वाण प्राप्त करनेका उल्लेख है और जो निम्न प्रकार है—

(ख) बीसं तु जिणवरिंदा अमरासुर-वंदिदा धुद-किलेसा ।
सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥२॥—नि० का० ।

(ग) सम्मेद-महागिरि सिद्ध जे वि, हउं वंदउं बीस-जिणिंद ते वि ।
—अ० नि० भ० ।

इस तरह इस तीर्थका जैनधर्ममें बड़ा ही गौरवपूर्ण स्थान है। प्रतिवर्ष सहस्रों जैनी भाई इस सिद्धतीर्थकी वन्दनाके लिये जाते हैं। यह विहारप्रान्तके हजारीबाग जिलेमें ईसरी स्टेशनके, जिसका अब पारसनाथ नाम होगया है, निकट है। इसे 'पारसनाथ हिल' (पार्श्वनाथका पहाड़) भी कहते हैं, जिसका कारण यह है कि पर्वतपर २३वें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथका सबसे बड़ा और प्रमुख जिनमन्दिर बना हुआ है।

४. पावापुर

यहाँसे अन्तिम तीर्थङ्कर वर्द्धमान-महावीरने निर्वाण प्राप्त किया है। अतएव पावापुर जैनसाहित्यमें सिद्धक्षेत्र माना जाता है। आचार्य पूज्यपादने लिखा है—

पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये ।
श्रीवर्द्धमानजिनदेव इति प्रतीतो निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ॥
—निर्वा० भ० २४।

निर्वाणकाण्ड और अपभ्रंश निर्वाणभक्तिमें भी यही बतलाया है। यथा—

(क) पावाए णिव्वुदो महावीरो—नि० का० गा० १।

(ख) पावापुर वंदउं वड्ढमाणु,
जिणि महियलि पयडिउ विमलणाणु।—अ. नि. भ.।

यह पावापुर भी विहारप्रान्तमें है और पटनाके निकट है जो गुणावासे १२ मीलकी दूरीपर है और जहाँ मोटर, ताँगे आदिसे जाते हैं। यहाँ कार्तिक वदी अमावस्याको भगवान महावीरके निर्वाणदिवसोपलक्ष्यमें एक बड़ा मेला भरता है। यहाँ वीरजिनेन्द्रकी सातिशय मूर्ति रही है जिसका मदनकीर्तिने उल्लेख किया है।

५. गिरनार (ऊर्जयन्तगिरि)

यहाँसे २२वें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमिने निर्वाण प्राप्त किया है और असंख्य ऋषि-मुनियोंने भी यहाँ तप करके सिद्धपद पाया है। अतएव यह सिद्धतीर्थ है। आचार्य पूज्यपादने कहा है कि जिन 'अरिष्टनेमिकी इन्द्रादि और जैनेतर साधुजन भी अपने कल्याणके लिये उपासना करते हैं उन अरिष्टनेमिने अष्टकर्मोंको नाशकर महान् उर्जयन्तगिरि—गिरनारसे मुक्तिपद प्राप्त किया।' यथा—

यत्राऽर्च्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः
पाखण्डिभिश्च परमार्थ-गवेष-शीलैः।
नष्टाऽष्ट-कर्म-समये तदरिष्टनेमिः
सम्प्राप्तवान् क्षितिधरे बृहदूर्जयन्ते ॥२३॥

निर्वाणकाण्डकार और अपभ्रंश निर्वाणभक्तिकारका भी यही कहना है—

(क) उज्जंते णेमिजिणो'—प्रा० नि० का० गा० १।

(ख) 'उज्जेंतिमहागिरि सिद्धिपत्तु,
सिरिनेमिनाहु जादवपवित्तु।

इसके सिवाय इन दोनों ग्रन्थकारोंने यह भी लिखा है कि प्रद्युम्नकुमार, शम्भुकुमार, अनिरुद्धकुमार और सात सौ बहत्तर कोटि मुनियोंने भी इसी उर्जयन्तगिरि—गिरनारसे सिद्ध पद प्राप्त किया है। यथा—

(क) णेमसामिपज्जुण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो।
बाहत्तरकोडीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा॥ नि. का. ५

(ख) अण्णो पुणु सामपजुण्णवेवि,
अणिरुद्धसहिय हुई नवमि ते वि।
अवरे पुणु सत्तसयाइं तित्थु,
बाहत्तरिकोडिउ सिद्धपत्तु। —अप. नि. भ.।

यह उर्जयन्तगिरि पाँच पहाड़ोंमें विभक्त है। पहले पहाड़की एक गुफामें राजुलकी मूर्ति है। राजुलने इसी पर्वतपर दीक्षा ली थी और तप किया था। राजुल तीर्थङ्कर नेमिनाथकी पत्नी बननेवाली थीं, पर नेमिनाथके किसी एक निमित्तको लेकर दीक्षित होजानेपर उन्होंने भी दीक्षा ले ली थी और फिर विवाह नहीं कराया था। दूसरे पहाड़से अनिरुद्धकुमार, तीसरेसे शम्भुकुमार, चौथेसे श्रीकृष्णजीके पुत्र प्रद्युम्नकुमार और पाँचवेंसे तीर्थङ्कर नेमिनाथने निर्वाण प्राप्त किया था। इस सिद्धतीर्थकी जैनसमाजमें वही प्रतिष्ठा है जो सम्मेदशिखरकी है। यह

सौराष्ट्र (गुजरात)में जूनागढ़के निकट अवस्थित है। तलहटीमें धर्म-शालायें भी बनी हुई हैं। मदनकीर्तिके उल्लेखानुसार यहाँ श्रीनेमि-नाथकी बड़ी मनोज्ञ और निराभरण मूर्ति रही जो खास प्रभाव एवं अतिशयको लिये हुए थी। मालूम नहीं वह मूर्ति अब कहाँ गई? या खण्डित हो चुकी है क्योंकि अब वहाँ चरणचिह्न ही पाये जाते हैं।

६. चम्पापुर

बारहवें तीर्थङ्कर वासुपूज्यका यह गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवल-ज्ञान और मोक्षका स्थान है। अतएव यह सिद्धतीर्थ और अतिशय तीर्थ दोनों है। स्वामी पूज्यपादने लिखा है कि चम्पापुरमें वसुपूज्यसुत भगवान वासुपूज्यने रागादि कर्मबन्धको नाशकर सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त की है। यथा—

चम्पापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान् ।
सिद्धिं परामुपगतो गतरागबन्धः ॥ —सं. नि. भ. २२।

यही निर्वाणकाण्ड और अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिमें कहा है—

(क) 'चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो'—नि० का० १।

(ख) पुणु चंपनयरि जिणु वासुपुज्ज,
णिव्वाण-पत्तु वंदेवि रज्जु।—अ० नि० भ०।

इस तरह चम्पापुरको जैनसाहित्यमें एक पूज्य तीर्थ माना गया है। इसके सिवाय, जैनग्रन्थोंमें चम्पापुरकी प्राचीन दस राजधानियोंमें भी गिनती की गई है और उसे एक समृद्ध नगर बतलाया गया है[१]।

---

१ देखो, डा० जगदीशचन्द्रकृत 'जैनग्रन्थोंमें भौगोलिक सामग्री और भारतवर्षमें जैनधर्मका प्रचार' शीर्षक लेख, प्रेमी-अभिनन्दनग्रन्थ पृष्ठ २५४।

यह चम्पापुर वर्तमानमें एक गाँवके रूपमें मौजूद है और भागलपुरसे ८ मीलकी दूरीपर है। मदनकीर्तिके उल्लेखानुसार यहाँ १२वें तीर्थङ्कर वासुपूज्यकी अतिशयपूर्ण मूर्ति रही है जिसकी देव-मनुष्यादि पुष्प-निचयसे बड़ी भक्ति-पूजा करते थे। प्रतीत होता है कि चम्पापुरके पास जो मन्दारगिरि है उससे सटा हुआ एक तालाब है। इस तालाबके कमल ही मदनकीर्तिको पुष्पनिचय विवक्षित हुए हैं—उन्हींसे भक्तजन उनकी पूजा करते होंगे।

७. विपुलगिरि

राजगृहके निकट विपुलगिरि, वैभारगिरि, कुण्डलगिरि अथवा पाण्डुकगिरि, ऋषिगिरि और बलाहकगिरि ये पाँच पहाड़ स्थित हैं। बौद्ध-ग्रन्थोंमें इनके वेपुल्ल, वेभार, पाण्डव, इसिगिलि और गिज्झकूट ये नाम पाये जाते हैं। इन पाँच पहाड़ोंका जैनग्रन्थोंमें विशेष महत्त्व वर्णित है। इनपर अनेक ऋषि-मुनियोंने तपश्चर्याकर मोक्ष-साधन किया है। आचार्य पूज्यपादने इन्हें सिद्धक्षेत्र बतलाया है और लिखा है कि इन पहाड़ोंसे अनेक साधुओंने कर्म-मल नाशकर सुगति प्राप्त की है। यथा—

द्रोणीमति प्रवरकुण्डल-मेढ़के च
वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे ।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि-बलाहके च

* * *

ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः
स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ।—नि. भ. २६, ३०।

इन पाँचोंमें 'विपुलगिरि'का तो और भी ज्यादा महत्व है; क्योंकि उसपर अन्तिम तीर्थङ्कर वर्धमान-महावीरका अनेकबार समवशरण भी आया है और वहाँसे उन्होंने मुमुक्षुओंको मोक्षमार्गका उपदेश किया है। मदनकीर्तिने यहाँके प्रभावपूर्ण जिनबिम्बका उल्लेख किया है। जान पड़ता है उसका अतिशय लोकविश्रुत था। सम्भव है जो विपुलगिरिपर प्राचीन जिनमन्दिर बना हुआ है और जो आज खण्डहरके रूपमें वहाँ मौजूद है उसीमें उल्लिखित जिनबिम्ब रहा होगा। अब यह खण्डहर श्वेताम्बरसमाजके अधिकारमें है। इसकी खुदाई होनेपर जैनपुरातत्त्वकी पर्याप्त सामग्री मिलनेकी सम्भावना है।

८. विन्ध्यगिरि

आचार्य पूज्यपादने 'विन्ध्यगिरि'को सिद्धक्षेत्र कहा है और वहाँसे अनेक साधुओंके मोक्ष प्राप्त करनेका समुल्लेख किया है[१]। यह विन्ध्यगिरि विन्ध्याचल जान पड़ता है जो मध्यप्रान्तमें रेवा (नर्मदा)के किनारे-किनारे बहुत दूर तक पाया जाता है और जिसकी कुछ छोटी छोटी पहाड़ियाँ आस-पास अवस्थित हैं। मदनकीर्तिने इसी विन्ध्यगिरि अथवा विन्ध्याचलके जिनमन्दिरोंका, निर्देश किया प्रतीत होता है। झाँसीके पास जो एक देवगढ़ नामक स्थान है जो एक सुन्दर पहाड़ीपर स्थित है वहाँ विक्रमकी १०वीं शताब्दीके आस-पास बहुत मन्दिर बने हैं[२] जो शिल्पकला तथा प्राचीन कारीगरीकी दृष्टिसे उल्लेखनीय हैं। भारत सरकारके पुरातत्त्वविभागको यहाँसे २०० के लगभग शिलालेख

---

१ 'विन्ध्ये च पौदनपुरे वृषदीपके च'—नि० भ०।

२ देखो, कल्याणकुमार शशिकृत 'देवगढ़' नामक पुस्तककी प्रस्तावना।

प्राप्त हुए हैं। उनमें ६० पर तो समय भी अङ्कित है। सबसे पुराना लेख वि. सं. ६१६ का है और अर्वाचीन सं. १८७६ का है। यह भी हो सकता है कि पूज्यपाद और मदनकीर्तिने जिस विन्ध्यगिरिकी सूचना की है वह मैसूर प्रान्तके हासन जिलेके चेन्नरायपाटन तालुकेमें पायी जानेवाली विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि नामकी दो सुन्दर पहाड़ियोंमेंसे पहली पहाड़ी विन्ध्यगिरि हो[1]। यह पहाड़ी 'दोड्डबेट्ट' अर्थात् बड़ीपहाड़ीके नामसे प्रसिद्ध है। इसपर आठ जिनमन्दिर बने हुए हैं। गोम्मटेश्वरकी संसारप्रसिद्ध विशाल मूर्ति इसीपर उत्कीर्ण है जिसे चामुण्डरायने विक्रम-की ग्यारहवीं शताब्दीमें निर्मित कराया था। अतएव इस प्रसिद्ध मूर्तिके कारण पर्वतपर और भी कितने ही जिनमन्दिर बनवाये गये होंगे और इसलिये उनका भी प्रस्तुत रचनामें उल्लेख सम्भव है। यह पहाड़ी अनेक साधु-महात्माओंकी तपःभूमि रही है। अतः विन्ध्यगिरि सिद्धतीर्थ तथा अतिशयतीर्थ दोनों हैं।

अतिशयतीर्थ

अब मदनकीर्तिद्वारा उल्लिखित १८ अतिशयतीर्थों अथवा सातिशय जिनबिम्बोंका भी यहाँ कुछ परिचय दिया जाता है।

श्रीपुर-पार्श्वनाथ

जैनसाहित्यमें श्रीपुरके श्रीपार्श्वनाथका बड़ा माहात्म्य और अतिशय बतलाया गया है और उस स्थानको एक पवित्र तथा प्रसिद्ध अतिशयतीर्थके रूपमें उल्लेखित किया गया है। निर्वाणकाण्डमें जिन अतिशय-तीर्थोंका उल्लेख है उनमें 'श्रीपुर'का भी निर्देश है और

---

१ देखो, 'जैनशिलालेखसंग्रह' प्रस्तावना पृ० २।

वहाँके पार्श्वनाथकी वन्दना की गई है[१]। मुनि उदयकीर्तिने भी अपनी अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिमें श्रीपुरके पार्श्वनाथका अतिशय प्रदर्शित करते हुए उनकी वन्दना की है[२]। मदनकीर्तिसे कोई सौ-वर्ष बाद होनेवाले श्वेताम्बर विद्वान् जिनप्रभसूरिने भी अपने 'विविधतीर्थकल्प'में एक 'श्रीपुर-अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकल्प' दिया है और उसमें इस अतिशय-तीर्थका वर्णन करते हुए उसके सम्बन्धमें एक कथाको भी निबद्ध किया है[३]। कथाका सारांश यह है कि "लङ्काधीश दशग्रीवने माली सुमाली नामके अपने दो सेवकोंको कहीं भेजा। वे विमानमें बैठे हुए आकाश-मार्गसे जा रहे थे कि जाते-जाते भोजनका समय होगया। सुमालीको ध्यान आया कि जिनेन्द्र प्रतिमाको घर भूल आये और बिना देवपूजाके भोजन नहीं कर सकते। उन्होंने विद्याबलसे पवित्र बालूद्वारा भाविजिन श्रीपार्श्वनाथकी नवीन प्रतिमा बनाई। दोनोंने उसकी पूजा की और फिर भोजन किया। पश्चात् उस प्रतिमाको निकटवर्ती तालाबमें विराजमान कर आकाशमार्गसे चले गये। वह प्रतिमा शासनदेवताके प्रभावसे तालाबमें अखण्डितरूपमें बनी रही। कालान्तरमें उस तालाबका पानी कम हो गया और सिर्फ उसी गड्ढेमें रह गया जहाँ वह प्रतिमा स्थित थी। किसी समय एक श्रीपाल नामका राजा, जिसे भारी कोढ था, घूमता हुआ वहाँ पहुँचा और पहुँचकर उस पानीसे अपना हाथ-मुँह धोकर अपनी पिपासा शान्त की। जब वह घर लौटा तो उसकी रानीने उसके हाथ-मुँहको कोढरहित देखकर पुनः उसी पानीसे स्नान

१. यथा—'पासं सिरपुरि वंदमि ····।'—निर्वाणका०।

२ यथा—'अरु वंदउं सिरपुरि पासनाहु,
जो अंतरिक्खि थिउ णाणलाहु।

३ देखो, सिंघी ग्रन्थमालासे प्रकाशित 'विविधतीर्थकल्प' पृ० १०२।

करनेके लिये राजासे कहा। राजाने वैसा किया और उसका सर्व कोढ़ दूर हो गया। रानीको देवताद्वारा स्वप्नमें इसका कारण मालूम हुआ कि वहाँ पार्श्वजिनकी प्रतिमा विराजमान है और उसीके प्रभावसे यह सब हुआ है। फिर वह प्रतिमा अन्तरिक्षमें स्थित हो गई। राजाने वहाँ अपने नामाङ्कित श्रीपुरनगरको बसाया। अनेक महोत्सवोंके साथ उस प्रतिमाकी वहाँ प्रतिष्ठा की गई। तीनों काल उसकी पूजा हुई। आज भी वह प्रतिमा उसी तरह अन्तरिक्षमें स्थित है। पहले वह प्रतिमा इतने अधर थी कि उसके नीचेसे शिरपर घड़ा रक्खे हुए स्त्री निकल जाती थी, परन्तु कालवश अथवा भूमिरचनावश या मिथ्यात्वादिसे दूषित कालके प्रभावसे अब वह प्रतिमा इतने नीचे होगई कि एक चादर (धागा ?)का अन्तर रह गया है। इस प्रतिमाके अभिषेक जलसे दाद, खाज, कोढ़ आदि रोग शान्त होते हैं।" लगभग यही कथा मुनि श्रीशीलविजयजीने अपनी 'तीर्थमाला'में दी है और श्रीपुरके पार्श्वनाथका लोकविश्रुत प्रभाव प्रदर्शित किया है। मुनिजीने विक्रम सं. १७३१-३२ में दक्षिणके प्रायः समस्त तीर्थोंकी वन्दना की थी और उसका उक्त पुस्तकमें अपना अनुभूत वर्णन निबद्ध किया है[१]। यद्यपि उक्त कथाओंका ऐतिहासिक आधार तथ्यभूत है अथवा नहीं इसका निर्णय करना कठिन है फिर भी इतना अवश्य है कि उक्त कथाएँ एक अनुश्रुति हैं और काफी पुरानी हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि उक्त प्रतिमाके अभिषेकजलको शरीरमें लगानेसे दाद, खाज और कोढ़ जैसे रोग अवश्य नष्ट होते होंगे और इसी कारण उक्त प्रतिमाका अतिशय लोकमें दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया होगा। विक्रमकी नवमी शताब्दीके प्रखर तार्किक आचार्य विद्यानन्द जैसे

---

१ देखो, 'जैनसाहित्य और इतिहास' पृ० २२७।

विद्यानन्दाचार्य भी श्रीपुरके पार्श्वनाथकी महिमासे प्रभावित हुए हैं और उनका स्तवन करनेमें प्रवृत्त हुए हैं। अर्थात् श्रीपुरके पार्श्वनाथको लक्ष्यकर उन्होंने भक्तिपूर्ण 'श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र'की रचना की है। गङ्गनरेश श्रीपुरुषके द्वारा श्रीपुरके जैनमन्दिरके लिये दान दिये जानेका उल्लेख करनेवाला ई. सन् ७७६ का एक ताम्रपत्र भी मिला है[1]। इन सब बातोंसे श्रीपुरके पार्श्वनाथका ऐतिहासिक महत्त्व और प्रभाव स्पष्टतया जान पड़ता है।

अब विचारणीय यह है कि यह श्रीपुर कहाँ है—उसका अवस्थान किस प्रान्तमें है ?

प्रेमीजीका अनुमान है[2] कि धारवाड़ जिलेका जो शिरूर गाँव है और जहाँसे शक सं. ७८७का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है तथा जो इण्डियन ए. भाग १२ पृ. २१६में प्रकाशित हो चुका है वही प्रस्तुत श्रीपुर है। कुछ पाश्चात्य विद्वान् लेखकोंने बेसिम जिलेके 'सिरपुर' स्थानको एक प्रसिद्ध जैनतीर्थ बतलाया है और वहाँ प्राचीन पार्श्वनाथका मन्दिर होनेकी सूचनाएँ की हैं। गङ्गनरेश श्रीपुरुष (ई. ७७६) और आचार्य विद्यानन्द ई. ७७५-८४०)को इष्ट श्रीपुर ही प्रस्तुत श्रीपुर जान पड़ता है और जो मैसूर प्रान्तमें कहीं होना चाहिए, ऐसा भी हमारा अनुमान है। विद्वानोंको उसकी पूरी खोज करके उसकी ठीक स्थितिपर पूरा प्रकाश डालना चाहिये।

---

१ देखो, जैनसि० भा० भा० ४ किरण ३ पृ० १५८।

२ देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ० २३७।

हुलगिरि-शङ्खजिन

श्रीपुरके पार्श्वनाथकी तरह हुलगिरिके शङ्खजिनका भी अतिशय जैनसाहित्यमें प्रदर्शित किया गया है।

इस तीर्थके सम्बन्धमें जो परिचय-ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें मदनकीर्तिकी प्रस्तुत शासनचतुस्त्रिंशिका सबसे प्राचीन और प्रथम रचना है। इसमें लिखा है कि—"प्राचीन समयमें एक धर्मात्मा व्यापारी गौनमें शङ्खोंको भरकर कहीं जा रहा था। रास्तेमें उसे हुलगिरिपर रात हो गई। वह वहीं बस गया। सुबह उठकर जब चलने लगा तो उसकी वह शङ्खोंकी गौन अचल हो गई—चल नहीं सकी। जब उसमेंसे शङ्खजिन (पार्श्वनाथ)का आविर्भाव हुआ तो वह चल सकी। इस अतिशयके कारण हुलगिरि शङ्खजिनेन्द्रका तीर्थ माना जाने लगा। अर्थात् तबसे शङ्खजिनतीर्थ प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ।" मदनकीर्तिसे एक शताब्दी बाद होनेवाले जिनप्रभसूरि अपने 'विविधतीर्थकल्प' गत 'शङ्खपुर-पार्श्वनाथ' नामक कल्पमें शङ्खजिनका परिचय देते हुए लिखते हैं कि "प्राचीन समयकी बात है कि नवमे प्रतिनारायण जरासन्ध अपनी सेनाको लेकर राजगृहसे नवमे नारायण कृष्णसे युद्ध करनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओर गये। कृष्ण भी अपनी सेना लेकर द्वारकासे निकलकर उसके सम्मुख अपने देशकी सीमापर जा पहुँचे। वहाँ भगवान अरिष्टनेमिने शङ्ख बजाया और शंखेश्वर नामका नगर बसाया। शङ्खकी आवाजको सुनकर जरासन्ध क्षोभित हो गया और जरा नामकी कुलदेवताकी आराधना करके उसे कृष्णकी सेनामें भेज दिया। जराने कृष्णकी सारी सेनाको श्वास रोगसे पीड़ित कर दिया। जब कृष्णने अपनी सेनाका यह हाल देखा तो चिन्तातुर

होकर अरिष्टनेमिसे पूछा कि 'भगवन् ! मेरी यह सेना कैसे निरुपद्रव (रोगरहित) होगी और कैसे विजयश्री प्राप्त होगी ।' तब भगवान्ने अवधिज्ञानसे जानकर कहा कि 'भूगर्भमें नागजातिके देवोंद्वारा पूजित भाविजिन पार्श्वकी प्रतिमा स्थित है। यदि तुम उसकी पूजा-आराधना करो तो उससे तुम्हारी सारी सेना निरुपद्रव हो जायगी और विजयश्री भी मिलेगी।' इस बातको सुनकर कृष्णने सात मास और तीन दिन तक निराहार विधिसे नागेन्द्रकी उपासना की। नागेन्द्र प्रकट हुआ और उससे सबहुमान पार्श्वजिनेन्द्रकी प्रतिमा प्राप्त की। बड़े उत्सवके साथ उसकी अपने देवताके स्थानमें स्थापनाकर त्रिकाल पूजा की। उसके अभिषेकजलको सेनापर छिड़कते ही उसका वह सब श्वास-रोगादि उपद्रव दूर होगया और सेना लड़नेके समर्थ हो गई। जरासन्ध और कृष्ण दोनोंका युद्ध हुआ, युद्धमें जरासन्ध हार गया और कृष्णको विजयश्री प्राप्त हुई। इसके बाद वह प्रतिमा समस्त विघ्नोंको नाश करने और ऋद्धि-सिद्धियोंको पैदा करनेवाली हो गई। और उसे वहीं शङ्खपुरमें स्थापित कर दिया। कालान्तरमें वह प्रतिमा अन्तर्धान हो गई। फिर वह एक शङ्खकूपमें प्रकट हुई। वहाँ वह आज तक पूजी जाती है और लोगोंके विघ्नादिको दूर करती है। यवन राजा भी उसकी महिमा (अतिशय)का वर्णन करते हैं' ।[1] मुनि शीलविजयजीने भी तीर्थमालामें एक कथा दी है जिसका आशय यह है[2] कि 'किसी यक्षने श्रावकोंसे कहा कि नौ दिन तक एक शङ्खको फूलोंमें रक्खो और फिर दसवें दिन दर्शन करो। इसपर श्रावकोंने नौ दिन ऐसा ही किया और नवें दिन ही उसे देख लिया और तब

---

१ देखो, 'विविधतीर्थकल्प' पृ० ५२ ।

२ प्रेमीजी कृत 'जैनसाहित्य और इतिहास' (पृ० २३७)से उद्धृत ।

उन्होंने शङ्खको प्रतिमारूपमें परिवर्तित पाया, परन्तु प्रतिमाके पैर शङ्खरूप ही रह गये, अर्थात् यह दशवें दिनकी निशानी रह गई। शङ्खमेंसे नेमिनाथ प्रभु प्रकट हुए और इस प्रकार वे 'शङ्खपरमेश्वर' कहलाये।' निर्वाणकाण्ड और अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिके रचयिताओंने भी होलागिरिके शङ्खदेवका उल्लेख करके उनकी वन्दना की है। यथा—

(क) '........वंदमि होलागिरी संखदेवं पि।'—नि० का० २४।

(ख) 'होलागिरि संखुजिणिंदु देउ,
विंझणणरिंदु ण वि लद्ध छेउ।'—अ० नि० भ०।

यद्यपि अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिकारने विंझण (विन्ध्य ?) नरेन्द्रके द्वारा उनकी महिमाका पार न पा सकनेका भी उल्लेख किया है पर उससे विशेष परिचय नहीं मिलता। ऊपरके परिचयोंमें भी प्रायः कुछ विभिन्नता है फिर भी इन सब उल्लेखों और परिचयोंसे इतना स्पष्ट है कि शङ्ख जिनतीर्थ रहा है और जो काफी प्रसिद्ध रहा है तथा जिनप्रभसूरिके उल्लेखानुसार वह यवन राजाओं द्वारा प्रशंसित और वर्णित भी रहा है। श्रीभानुकीर्तिने शङ्खदेवाष्टक[1], श्रीजयन्तविजयने शंखेश्वर महातीर्थ[2] और श्रीमणिलाल लालचन्दने शंखेश्वरपार्श्वनाथ[3] जैसी स्वतन्त्र रचनाएँ भी शङ्खजिनपर लिखी हैं।

---

१ माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें प्रकाशित सिद्धान्तसारादिसंग्रहमें सङ्कलित।

२ विजयधर्मसूरि-ग्रन्थमाला, उज्जैनसे प्रकाशित।

३ सत्तीवाचनमाला अहमदाबादसे मुद्रित।

शङ्खजिनतीर्थकी अवस्थितिपर विचार करते हुए प्रेमीजीने लिखा[1]—

'अतिशयक्षेत्रकाण्डमें "होलगिरि संखदेवं पि" पाठ है जिससे मालूम होता है कि होलगिरि नामक पर्वतपर शङ्खदेव या शंखेश्वर पार्श्वनाथ नामका कोई तीर्थ है। मालूम नहीं, इस समय यह ज्ञात है या नहीं।'...

जैनसाहित्य और इतिहासको प्रस्तुत करते हुए अब उन्होंने उसमें लिखा है[2]—

'लक्ष्मेश्वर धारवाड़ जिलेमें मिरजके पटवर्धनकी जागीरका एक गाँव है। इसका प्राचीन नाम 'पुलगेरे' है। यहाँ 'शङ्ख-वस्ति' नामका एक विशाल जैनमन्दिर है जिसकी छत ३६ खम्भोंपर थमी हुई है। यात्री (मुनि शीलविजय)ने इसीको 'शङ्ख-परमेश्वर' कहा जान पड़ता है। इस शङ्ख-वस्तिमें छह शिलालेख प्राप्त हुए हैं। शक संवत् ६५६के लेखके अनुसार चालुक्य-नरेश विक्रमादित्य (द्वितीय)ने पुलगेरेकी शंखतीर्थवस्तीका जीर्णोद्धार कराया और जिनपूजाके लिये भूमि दान की। इससे मालूम होता है कि उक्त वस्ति इससे भी प्राचीन है। हमारा (प्रेमीजीका) अनुमान है कि अतिशयक्षेत्रकाण्ड-में कहे गये शंखदेवका स्थान यही है। जान पड़ता है कि लेखकोंकी अज्ञानतासे 'पुलगेरे' ही किसी तरह 'होलगिरि' हो गया है।'

---

१ देखो, सिद्धान्तसारादिसंग्रहकी प्रस्तावना पृ० २८का फुटनोट।

२ देखो, 'जैनसाहित्य और इतिहास' पृ० २३६-२३७का फुटनोट।

मुनि शीलविजयजीने दक्षिणके तीर्थोंकी पैदल वन्दना की थी और जिसका वर्णन उन्होंने 'तीर्थमाला'में किया है। वे धारवाड़ जिलेके बङ्कापुरको, जिसे राष्ट्रकूट महाराज अमोघवर्ष (८५१-६९)के सामन्त 'बंकेयरस'ने अपने नामसे बसाया था[1], देखते हुए इसी जिलेके लक्ष्मेश्वरपुर तीर्थ पहुँचे थे और वहाँके 'शंख-परमेश्वर'की वन्दना की थी, जिनके बारेमें उन्होंने पूर्वोल्लिखित एक अनुश्रुति दी है। प्रेमीजीने इनके द्वारा वर्णित उक्त 'लक्ष्मेश्वरपुर तीर्थ' पर टिप्पण देते हुए ही अपना उक्त विचार उपस्थित किया है और पुलगेरेको शंखदेवका तीर्थ अनुमानित किया है तथा होलगिरिको पुलगेरेका लेखकोंद्वारा किया गया भ्रान्त उल्लेख बतलाया है।

पुलगेरेका होलगिरि या हुलगिरि अथवा होलागिरि हो जाना कोई असम्भव नहीं है। देशभेद और कालभेद तथा अपरिचितिके कारण उक्त प्रकारके प्रयोग बहुधा हो जाते हैं। मुनिसुव्रतनाथकी प्रतिमा जहाँ प्रकट हुई उस स्थानका तीन लेखकोंने तीन तरहसे उल्लेख किया है। निर्वाणकाण्डकार 'अस्सारम्मे पट्टणि' कहकर 'आशारम्य' नामक नगरमें उसका प्रकट होना बतलाते हैं और अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिकार मुनि उदयकीर्ति 'आसरंमि' लिखकर 'आश्रम'में उसका आविर्भाव कहते हैं। मदनकीर्ति उसे 'आश्रम' और अवरोधनगर वर्णित करते हैं और जिनप्रभसूरि आदि विद्वान् प्रतिष्ठानपुर मानते हैं। अतएव देशादि भेदसे यदि पुलगेरेका हुलगिरि या होलागिरि आदि बन गया हो तो आश्चर्यकी बात नहीं है। अतः जब तक कोई दूसरे स्पष्ट प्रमाण हुलगिरि या होलागिरिके अस्तित्व साधक नहीं मिलते तब तक प्रेमीजीके उक्त विचार और अनुमानको ही मान्य करना उचित जान पड़ता है।

१ देखो, प्रेमीजी कृत 'जैनसाहित्य और इतिहास' पृ० २३६का फुटनोट।

धारा-पार्श्वनाथ

धाराके पार्श्वनाथके सम्बन्धमें मदनकीर्तिके प्रस्तुत उल्लेखके सिवाय और कोई परिचायक उल्लेख अभी तक नहीं मिले और इस लिये उसके बारेमें इस समय विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता।

बृहत्पुर-बृहद्देव

मदनकीर्तिने बृहत्पुरमें बृहद्देवकी ५७ हाथकी विशाल प्रस्तर मूर्तिका उल्लेख किया है जिसे अर्ककीर्ति नामके राजाने बनवाया था। जान पड़ता है यह 'बृहत्पुर' बड़वानीजी है जो उसीका अपभ्रंश (बिगड़ा हुआ) प्रयोग है और 'बृहद्देव' वहाँके मूलनायक आदिनाथका सूचक है। बड़वानीमें श्रीआदिनाथकी ५७ हाथकी विशाल प्रस्तर मूर्ति प्रसिद्ध है और जो बावनगजाके नामसे विख्यात है। बृहद्देव पुरुदेवका पर्यायवाची है और पुरुदेव आदिनाथका नामान्तर है। अतएव बृहत्पुरके बृहद्देवसे मदनकीर्तिको बड़वानीके श्रीआदिनाथके अतिशय-का वर्णन करना विवक्षित मालूम होता है। इस तीर्थके बारेमें संक्षिप्त परिचय देते श्रीयुत पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने अपनी 'जैनधर्म' नामक पुस्तकके 'तीर्थक्षेत्र' प्रकरण (पृ. ३३५)में लिखा है:—

'बड़वानीसे ५ मील पहाड़पर जानेसे बड़वानी क्षेत्र मिलता है। ....क्षेत्रकी वन्दनाको जाते हुए सबसे पहले एक विशालकाय मूर्ति के दर्शन होते हैं। यह खड़ी हुई मूर्ति भगवान ऋषभदेवकी है, इसकी ऊँचाई ८४ फीट है। इसे बावनगजाजी भी कहते हैं। सं. १२२३में इसके जीर्णोद्धार होनेका उल्लेख मिलता है। पहाड़पर २२ मन्दिर हैं। प्रतिवर्ष पौष सुदी ८से १५ तक मेला होता है।'

बड़वानी मालवा प्रान्तका एक प्राचीन प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र है और जो इन्दौरके पास है। निर्वाणकाण्ड[1] और अपभ्रंश निर्वाणभक्ति[2] के रचयिताओंने भी इस तीर्थका उल्लेख किया है।

जैनपुरके दक्षिण गोम्मटदेव

'जैनपुर' जैनबिद्री व श्रवणबेलगोलाका प्राचीन नाम है। गङ्गनरेश राचमल्ल (ई. ९७४-९८४)के सेनापति और मन्त्री चामुण्डरायने वहाँ बाहुबलि स्वामीकी ५७ फीट ऊँची खड्गासन विशाल पाषाण-मूर्ति बनवाई थी। यह मूर्ति एक हजार वर्षसे जाड़े, गर्मी और वर्षातकी चोटोंको सहती हुई उसी तरह आज भी वहाँ विद्यमान है और संसारकी प्रसिद्ध वस्तुओंमेंसे एक है। इस मूर्तिकी प्रशंसा करते हुए काका कालेलकरने अपने एक लेखमें लिखा है[3]:—

'मूर्तिका सारा शरीर भरावदार, यौवनपूर्ण, नाजुक और कान्तिमान है। एक ही पत्थरसे निर्मित इतनी सुन्दर मूर्ति संसारमें और कहीं नहीं। इतनी बड़ी मूर्ति इतनी अधिक स्निग्ध है कि भक्तिके साथ कुछ प्रेमकी भी यह अधिकारिणी बनती है। धूप, हवा और पानीके प्रभावसे पीछेकी ओर ऊपरकी पपड़ी खिर पड़नेपर भी इस मूर्तिका लावण्य खण्डित नहीं हुआ है।'

डाक्टर हीरालाल जैन लिखते हैं[4]—'यह नग्न, उत्तर-मुख खड्गासन मूर्ति समस्त संसारकी आश्चर्यकारी वस्तुओंमेंसे है।

---

१ देखो, गाथा नं० १२। २ देखो, गाथा नं० ११।

३ जैनधर्म पृ० २४९से उद्धृत।

४ शिलालेखसंग्रह प्रस्तावना पृ० १७-१८।

"......एशिया खण्ड ही नहीं समस्त भूतलका विचरण कर आइये, गोम्मटेश्वरकी तुलना करनेवाली मूर्ति आपको क्वचित् ही दृष्टिगोचर होगी। बड़े-बड़े पश्चिमीय विद्वानोंके मस्तिष्क इस मूर्तिकी कारीगरीपर चक्कर खा गये हैं। इतने भारी और प्रबल पाषाणपर सिद्धहस्त कारीगर-ने जिस कौशलसे अपनी छैनी चलाई है उससे भारतके मूर्तिकारोंका मस्तक सदैव गर्वसे ऊँचा उठा रहेगा। यह सम्भव नहीं जान पड़ता कि ५७ फुटकी मूर्ति खोद निकालनेके योग्य पाषाण कहीं अन्यत्रसे लाकर इस ऊँची पहाड़ीपर प्रतिष्ठित किया जा सका होगा। इससे यही ठीक अनुमान होता है कि उसी स्थानपर किसी प्रकृतिदत्त स्तम्भाकार चट्टानको काटकर इस मूर्तिका आविष्कार किया गया है। कम-से-कम एक हजार वर्षसे यह प्रतिमा सूर्य, मेघ, वायु आदि प्रकृतिदेवीकी अमोघ शक्तियोंसे बातें कर रही है पर अब तक उसमें किसी प्रकारकी थोड़ी भी क्षति नहीं हुई। मानो मूर्तिकारने उसे आज ही उद्घाटित की हो।'

इस मूर्तिके बारेमें मदनकीर्तिने लिखा है कि 'पाँचसौ आदमियोंके द्वारा इस विशाल मूर्तिका निर्माण हुआ था और आज भी देवगण उसकी सविशेष पूजा करते हैं।' प्राकृत निर्वाणकाण्ड[1] और अपभ्रंश निर्वाणभक्ति[2]में भी देवोंद्वारा उसकी पूजा होने तथा पुष्पवृष्टि (केशरकी वर्षा) करनेका उल्लेख है। इन सब वर्णनोंसे जैनपुरके

---

१ गोम्मटदेवं वंदमि पंचसयं धणुह-देह-उच्चत्तं।
देवा कुणंति वुट्ठी केसर-कुसुमाण तस्स उवरिम्मि ॥२५॥

२ वंदिज्जइ गोम्मटदेउ तित्थु, जसु अणु-दिणु पणवइ सुरहं सत्थु।

दक्षिण गोम्मटदेवकी महिमा और प्रभावका अच्छा परिचय मिलता है।

विश्वसेन नृपद्वारा निष्कासित शान्तिजिन

मदनकीर्ति और उदयकीर्तिके उल्लेखोंसे मालूम होता है कि विश्वसेन नामके किसी राजा द्वारा समुद्रसे श्रीशान्ति जिनेश्वरकी प्रतिमा निकाली गई थी, जिसका यह अतिशय था कि उसके प्रभावसे लोगोंके क्षुद्र उपद्रव दूर होते थे और लोगोंको बड़ा सुख मिलता था। यद्यपि मदनकीर्तिके उल्लेखसे यह ज्ञात नहीं होता कि शान्तिजिनेश्वरकी उक्त प्रतिमा कहाँ प्रकट हुई? पर उदयकीर्तिके निर्देशसे[1] विदित होता है कि वह प्रतिमा मालवतीमें प्रकट हुई थी। मालवती सम्भवतः मालवाका ही नाम है। अस्तु।

पुष्पपुर-पुष्पदन्त

पुष्पपुर पटना (बिहार) का प्राचीन नाम है। संस्कृत साहित्यमें पटनाको पाटलिपुत्रके सिवाय कुसुमपुरके नामसे भी उल्लेखित किया गया है[2]। अतएव पुष्पपुर पटनाका ही नामान्तर जान पड़ता है। मदनकीर्तिके उल्लेखानुसार वहाँ श्रीपुष्पदन्त प्रभुकी सातिशय प्रतिमा भूगर्भसे निकली थी जिसकी व्यन्तरदेवों द्वारा बड़ी भक्तिसे पूजा की जाती थी। मदनकीर्तिके इस सामान्य परिचयोल्लेखके अलावा पुष्पपुरके श्रीपुष्पदन्तप्रभुके बारेमें अभीतक और कोई उल्लेख या परिचयादि प्राप्त नहीं हुआ।

---

१ मालव संति वंदउ पवित्तु, विससेणराय कड्ढिउ निरुत्तु ॥

२ देखो, 'विविधतीर्थकल्प' गत 'पाडलिपुत्तनगरकल्प' पृ० ६८।

नागद्रह-नागहृदेश्वर

विविधतीर्थकल्पमें चौरासी तीर्थोंके नामोंको गिनाते हुए उसके कर्ता जिनप्रभसूरिने नागद्रह अथवा नागहृदमें श्रीनागहृदेश्वर (पार्श्वनाथ) तीर्थका निर्देश किया है[1]। प्राकृतनिर्वाणकाण्डकार[2] तथा उदयकीर्तिने भी नागद्रहमें श्रीपार्श्वस्वयम्भुदेवकी वन्दना की है[3]। इस तीर्थके उपलब्ध उल्लेखोंमें मदनकीर्तिका उल्लेख प्राचीन है और कुछ सामान्य परिचयको भी लिये हुए है। इस परिचयमें उन्होंने लिखा है कि श्रीनागहृदेश्वर जिन कोढ़ आदि अनेक प्रकारके रोगों तथा अनिष्टोंको दूर करनेसे लोगोंके विशेष उपास्य थे और उनका यह अतिशय लोकमें प्रसिद्धिको प्राप्त था। इससे प्रकट है कि यह तीर्थ आजसे आठ सौ वर्ष पहलेका है। 'नागद्रह' नागदाका प्राचीन नाम मालूम होता है। जो हो।

पश्चिमसमुद्रतटस्थ चन्द्रप्रभ

मदनकीर्तिने पश्चिम समुद्रतटके जिन चन्द्रप्रभ प्रभुका अतिशय एवं प्रभाव वर्णित किया है उनका स्थान कहाँ है? उदयकीर्तिने उन्हें पश्चिम समुद्रपर स्थित तिलकापुरीमें बतलाया है[4]। यह तिलकापुरी सम्भवतः सिन्ध और कच्छके आस-पास कहीं रही होगी। अपने समयमें यह तीर्थ काफी प्रसिद्ध रहा प्रतीत होता है।

---

१ 'कलिकुण्डे नागह्रदे च श्रीपार्श्वनाथः।'—विविधतीर्थकल्प पृ० ८६।

२ देखो, प्रा० नि० का० गाथा २०।

३ 'णायद्दह पासु सयंभुदेउ, हउं वंदउं जसु गुण णत्थि छेउ।'

४ 'पच्छिमसमुद्दसलि-संख-वयणु, तिलयापुरि चंदप्पहरवणु।'

छाया-पार्श्वप्रभु

इस तीर्थका मुनि मदनकीर्ति, जिनप्रभसूरि और मानवसंहिताकार शान्तिविजय इन तीन विद्वानोंने उल्लेख किया है। मदनकीर्तिने उसे सिद्धशिलापर और जिनप्रभसूरि[1] तथा शान्तिविजयने[2] माहेन्द्रपर्वत और हिमालय पर्वतपर बतलाया है। आश्चर्य नहीं मदनकीर्तिको सिद्धशिलासे माहेन्द्रपर्वत अथवा हिमालय ही विवक्षित हो। यदि ऐसा हो तो कहना होगा कि माहेन्द्रपर्वत अथवा हिमालयपर कहीं यह तीर्थ रहा है और वह छायापार्श्वनाथतीर्थके नामसे प्रसिद्ध था। मालूम नहीं, अब उसका कोई अस्तित्व है अथवा नहीं?

अवरोधनगर-मुनिसुव्रतजिन

मुनि मदनकीर्तिके लेखानुसार अवरोधनगरमें, प्राकृतनिर्वाणकाण्डकारके[3] कथनानुसार आशारम्यनगरमें, मुनि उदयकीर्तिके[4] उल्लेखानुसार आश्रममें और जिनप्रभसूरि[5], मुनि शीलविजय[6] तथा शान्तिविजयके[7] वर्णनानुसार प्रतिष्ठानपुरमें[8] गोदावरी (बाणगङ्गा) के

---

१ 'माहेन्द्रपर्वते छायापार्श्वनाथः । ....हिमाचले छायापार्श्वो मन्त्राधिराजः श्रीस्फुलिंगः ।'—विविधतीर्थकल्प पृ० ८६ ।

२ 'माहेन्द्रपर्वतमें छायापार्श्वनाथका तीर्थ है। हिमालय पर्वतमें छाया पार्श्वनाथ मन्त्राधिराज और स्फुलिंग पार्श्वनाथका तीर्थ है।' मानवधर्मसंहिता पृ० ५९९-६०० (वि० सं० १९५५में प्रकाशित संस्करण)।

३ देखो, प्रा० नि० का० गाथा २०। ४ देखो, अपभ्रंशनिर्वाणभक्ति गा० ६। ५ देखो, विविधतीर्थकल्प पृ० ५९। ६ तीर्थमाला। ७ मानवधर्मसंहिता पृ० ५९९। ८ प्रेमीजीने लिखा है कि इसका वर्तमान नाम पैठण है जो हैदराबादके औरंगाबाद जिलेकी एक तहसील है (जैन सा० और इति० पृ० २३८का फुटनोट)।

किनारे एक शिलापर प्राचीन समयमें श्रीमुनिसुव्रतस्वामीकी प्रतिमा प्रकट हुई जिसका अतिशय लोकमें खूब फैला और तबसे यह तीर्थ प्रसिद्धिमें आया। उक्त विद्वानोंके लेखों और वर्णनोंसे स्पष्ट है कि विक्रमकी १३वीं, १४वीं शताब्दीमें यह एक बड़ा तीर्थ माना जाता था। और वि. की १८वीं शताब्दी तक प्रसिद्ध रहा तथा यात्री उसकी वन्दनाके लिये जाते रहे हैं।

मेवाड़देशस्थ नागफणी-मल्लिजिनेश्वर

मदनकीर्तिके उल्लेखसे मालूम होता है कि मेवाड़के नागफणी गाँवमें खेतको जोतते हुए एक आदमीको शिला मिली। उस शिलापर श्रीमल्लिजिनेश्वरकी प्रतिमा प्रकट हुई और वहाँ जिनमन्दिर बनवाया गया। जान पड़ता है कि उसी समयसे यह स्थान एक पवित्र क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्धिमें आया और तीर्थ माना जाने लगा। यद्यपि यह तीर्थ कबसे प्रारम्भ हुआ, यह बतलाना कठिन है फिर भी यह कहा जा सकता है कि वह सातसौ-साढ़े सातसौ वर्ष प्राचीन तो अवश्य है। अब मालूम नहीं वह वर्तमानमें मौजूद है या नहीं ?

मालवदेशस्थ मङ्गलपुर-अभिनन्दनजिन

मालवाके मङ्गलपुरके श्रीअभिनन्दनजिनके जिस अतिशय और प्रभावका उल्लेख मदनकीर्तिने किया है उसका जिनप्रभसूरिने भी अपने 'विविधतीर्थकल्प' गत 'अवन्ति देशस्थ-अभिनन्दनदेवकल्प' नामके कल्प (पृ. ५७)में निर्देश किया है और साथमें एक कथा भी दी है। उस कथाका सार यह है कि म्लेच्छोंने अभिनन्दनदेवकी मूर्तिको तोड़ दिया लेकिन वह जुड़ गई और एक बड़ा अतिशय

प्रगट हुआ। सम्भवतः इसी अतिशयके कारण प्राकृतनिर्वाणकाण्ड[1] और अपभ्रंश निर्वाणभक्ति[2] में उसकी वन्दना की गई है। अतएव इन सब उल्लेखादिकोंसे ज्ञात होता है कि मालवाके मङ्गलपुरके अभिनन्दनदेवकी महिमा लोकविश्रुत रही है और वह एक पवित्र अतिशयतीर्थ रहा है। यह तीर्थ भी आठ-सौ वर्षसे कम प्राचीन नहीं है।

इस तरह इस संक्षिप्त स्थानपर हमने कुछ ज्ञात अतिशय तीर्थों और सातिशय जिनबिम्बोंका कुछ परिचय देनेका प्रयत्न किया है। जिन अतिशय तीर्थों अथवा सातिशय जिनबिम्बोंका हमें परिचय मालूम नहीं हो सका उन्हें यहाँ छोड़ दिया गया है। आशा है पुरातत्त्व प्रेमी उनकी खोज कर यथास्थानादिका परिचय देंगे।

शासन-चतुस्त्रिंशिकागत विशेषनामसूची

अज	८	चार्वाक	१९
अभिनन्दनजिन	२४	छायापार्श्वविभु	१२
अर्ककीर्तिनृपति	५	जैनपुर	६
अवरोधनगर	२०	दक्षिणगोम्मट	६
आदिजिनेश्वर	१३	दिगम्बर	२
कपिल	८	देवेन्द्र	१३,१४
कैलास	२	देवेश्वर	२३
गिरिवर (गिरनार)	१४	धारा	५
चन्द्रप्रभ	१२	नर्मदा	२०
चम्पा	१५	नागफणी	२४

---

१ 'पासं तह अहिणंदण णायद्दहि मंगलाउरे वंदे।'—गाथा २०।

२ 'मंगलउरि वंदउं जगपयासु, अहिणंदणु जिणु गुणगणणिवासु।'

नागह्रदेश्वर	१०	व्यन्तर	९
परमेश्वर	८,१५	शुद्धमहार्जिका	२४
पावापुर	१३	शंखजिन	४
पोदनपुर	२	शूली	९
बाहुबलि	२	श्रीदेवी	१९
बुद्ध	८,९	श्रीनेमिनाथ	१४
बौद्ध	८,९,२२	श्रीपार्श्व	३,५,७
बृहद्देव	५	श्रीपुर	३
बृहत्पुर	५	श्रीपुष्पदन्त	९
मदनकीर्ति	३५	श्रीपुष्पपुर	९
मंगलपुर	२४	श्रीपूज्य	१
मालवदेश	२४	श्रीमती	५
माहेश्वर	९	श्रीमल्लिजिनेश्वर	२४
मुनिसुव्रत	२०	श्रीवासुपूज्य	१५
मेदपाट	२४	श्रीविश्वसेन	७
यति	१	श्रीशान्ति	७,२०
यदुवंश	१४	सच्छत्रवती	७
योगी	८	सम्मेदपृथ्वीरुह	८
यौग	८,१६	सम्मेदामृतवापिका	१०
वीरजिन	१३	सांख्य	८,१७
वैदान्तिक	११	सौधर्माधिपति	८
वैशेषिक	१५	सौराष्ट्र	१४
वैष्णव	९	स्मार्त्त	११
विन्ध्यगिरि	२३	हरि	८,९
विपुल(गिरि)	२२	हुलगिरि	४